राजकमल मनोविज्ञान माला—३

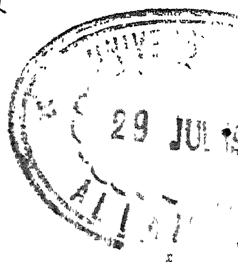
# बचपन

(पाँच से दस साल तक के बच्चों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण)

लेखक की Chapters about Childhood का अनुवाद

लेखक
मेरी चैडविक एस० आर० एन०

अनुवादक
पं० अमरनाथ विद्यालंकार






राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

प्रकाशक
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई ।

प्रथम संस्करण, १९४८
द्वितीय आवृत्ति, १९५१
तृतीय आवृत्ति, १९५४

मूल्य एक रुपया

मुद्रक
श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली ।

# क्रम







# भूमिका

शैशव—अर्थात् बालक के जन्म से लेकर प्रथम पाँच वर्षों—तथा इस आयु के बालकों की मानसिक दशा के सम्बन्ध में अब तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है। परन्तु इसके पीछे की अवस्था—अर्थात् पाँच से दस वर्ष की आयु के सम्बन्ध में कुछ न लिखकर लेखक लोग प्रायः इसके बाद की किशोर अवस्था की कठिनाइयों का ज़िक्र ले बैठते हैं।

परन्तु इस बीच की आयु के सम्बन्ध में लेखकों के चुप साधे रहने का अभिप्राय यह कभी नहीं हो सकता कि इसके विषय में लिखने के लिए कुछ है ही नहीं। ज्यों ही बालक घर की सुरक्षित चारदीवारी से निकलकर ज़रा बाहर के विशाल क्षेत्र में पग धरता है, तो उसे कई नई परिस्थितियों का सामना करना होता है, अनेक प्रकार की नई-नई कठिनाइयों से मुठभेड़ होती है। इन सबसे वह विविध प्रकार से प्रभावित भी होता है। बालक अपनी इन तकलीफ़ों का मुआवज़ा बीमारी में, कल्पना-सृष्टि के मीठे सपनों में तथा अन्य अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक लक्षणों में प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इन सब बातों का उसके भावी जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसीलिए इनका बहुत महत्त्व भी है।

इसलिए इस महत्त्वपूर्ण अवस्था के विषय में जो पुस्तक लिखी जायगी, उसमें माँ-बाप और शिक्षकों को बालक की इस आयु में प्रकट होने वाली कठिनाइयों और उनके उपचार के सम्बन्ध में कितनी ही उपयोगी बातें मिलेंगी।

इस पुस्तक का उद्देश्य यही है कि इस अवस्था के बालकों को ठीक मार्ग पर चलाने के लिए कुछ निर्देश दिये जायँ, जिससे भविष्य में बालक के मानसिक स्वास्थ्य में निरन्तर वृद्धि और उन्नति सुगम हो जाय।

—मेरी चेडविक

: १ :

# शरारती और ढीठ बच्चे

प्राय: सभी मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि मनुष्य के भावी जीवन का ढाँचा पहले पाँच वर्षों में ही नियत हो जाता है। इसलिए यह बात कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि उन बातों को जान लेने का अत्यधिक महत्त्व है, जो चरित्र का विकास होते समय प्रारम्भ में ही अंकित हो जाती हैं, क्योंकि विशेषज्ञ लोग उन्हें जानकर यह बतला सकते हैं कि आगामी जीवन में विशेष-विशेष परिस्थितियों में कौन बालक कैसा-कैसा व्यवहार करेगा। अथवा जब किसी विशेषज्ञ के पास कोई ऐसा बालक लाया जाय जो अपनी प्रारम्भिक शिक्षा और परिस्थितियों के दोष के कारण घर और स्कूल में बहुत सताता हो, तो उन पिछली बातों का ज्ञान होने से विशेषज्ञ इस बात का अन्दाजा लगा सकता है कि बालक क्यों ऐसा व्यवहार करता है, और यह भी सुझा सकता है कि उसे सुधारने के लिए कौनसे उपाय किये जाने आवश्यक हैं।

परन्तु इतना ही काफ़ी नहीं है। हमें माँ-बाप तथा शिक्षक को यह भी तो समझाना है कि चरित्र का प्रारम्भिक विकास किस प्रकार होता है, किस-किस प्रकार के दबावों के नीचे वृद्धि रुक

जाती है, और यदि खिंचाव असह्य हो जाय तो किस प्रकार बालक अपनी शिशु दशा की ओर लौट पड़ता है, जिस अवस्था को अब तक उसे सर्वथा पीछे छोड़ आना चाहिए था, अथवा ऐसी दशा में बालक के स्वभाव में विकार उत्पन्न हो जाता है और वह ऐसा नया कार्य चुन लेता है जो असुविधाजनक और अवांछनीय होता है।

आजकल का सामान्य अनुभव ऐसा नहीं है कि ज्यों ही कोई बालक पाँच वर्ष का हुआ माँ-बाप की उसके पालन-पोषण विषयक सब दिक्कतें दूर हो जायँ। शिक्षकों का अनुभव भी यह नहीं बतलाता कि जो शिक्षा वे बड़े उत्साह और प्रीतिपूर्वक बालकों को देते हैं, उसे वे शिशु हृदयंगम कर लेते हैं। इसके बिलकुल विपरीत, माँ-बाप प्रायः शिकायत किया करते हैं कि अमुक बालक अथवा बालिका शैशव के प्रारम्भिक काल में बिलकुल वैसे ही थे, जैसा कि माँ-बाप चाहा करते थे, परन्तु अब ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं, वे मनमानी करने लगे हैं, ढीठ हो गए हैं। अब वे सुस्त, उत्साहहीन और निठल्ले बनते जा रहे हैं।

## हमेशा बच्चा दुखदायी नहीं

'ढीठ लड़का' यह शब्द हम कई बार सुना करते हैं। इससे बालक के चरित्र की कई प्रवृत्तियाँ अभिप्रेत होती हैं। बालक के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा में कोई भी कठिनाई उपस्थित हो जाय, चाहे यह कठिनाई माँ-बाप के साथ उसके व्यवहार के सम्बन्ध में हो, भाई-बहनों के सम्बन्ध में अथवा स्कूल सम्बन्धी

हो, सबका एक ही कारण कहा जायगा कि 'लड़का बड़ा ही ढीठ है।'

परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं होती। सम्भव है कि जिस बात की हमें शिकायत पैदा हुई है वह बालक की स्वाभाविक वृद्धि का ही कोई नया लक्षण हो, जिसका माँ-बाप को अभी तक इस कारण ज्ञान न हो कि वह उनका पहला ही बच्चा है और उनके जीवन में यह पहला ही अनुभव है। ऐसी दशा में माँ-बाप को यह पता ही नहीं होता कि उन्हें किस बात की आशा करनी चाहिए और वे व्यर्थ ही घबरा जाते हैं।

हम सभ्यता की उस पराकाष्ठा तक पहुँच गए हैं जब अधिकांश लोग ऐसा सोचते प्रतीत होते हैं कि अब बालक के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के मार्ग में कोई भी कठिनाई उपस्थित नहीं होनी चाहिए। विशेष रूप से अब जब कि कुछ मनोवैज्ञानिक विषयों का ज्ञान हमेशा मार्ग प्रदर्शित करने के लिए उपस्थित है, वे आशा करते हैं कि बालकों पर उनकी शिक्षण-शैली का मशीन की भाँति नियम और बाकायदगी के साथ प्रभाव पड़े।

परन्तु मनुष्य कोई मशीन तो है नहीं। मनोवैज्ञानिक विषया का बोध तो हमें इतना समझ लेने में सहायक होता है कि व्यक्ति के मामले में भिन्न-भिन्न प्रकार की उलझनें उत्पन्न होती हैं। साथ ही जब हमें समूह से वास्ता पड़ता है तो उस समय की उलझनें व्यक्तियों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से सर्वथा भिन्न प्रकार

की होती हैं। मनोविज्ञान का परिचय हमें यह चेतावनी भी देता है कि हमारे लिए अपने बालकों की प्रकृति और उनकी प्रगति को भली भाँति समझना कोई बहुत सुगम कार्य नहीं है।

कोई बालक इसलिए दुखदायी प्रतीत होता हो, क्योंकि उसकी मनोवैज्ञानिक बनावट में जो मौलिक परिवर्तन निरन्तर हो रहा है, हम उससे सर्वथा अनभिज्ञ हों। हम बालक के साथ क्या कुछ करना चाह रहे होते हैं, इसे वह प्रायः बिलकुल भी नहीं समझ रहा होता। अगर वह इसे समझता है, तो भी हम यह क्यों आशा करते हैं कि उसके भावी सुख के विषय में हमारी जो इच्छाएँ और आकांक्षाएँ हैं उनसे उसे पूरी तरह सहमत होना ही चाहिए।

हमने यह मान रखा है कि हमारे बच्चे हमेशा वही कुछ करें जो हम उनसे कराना चाहते हैं, और हमें बिना कुछ कष्ट दिये बड़े होते चले जायँ। बच्चों के मन और उनकी भावनाओं का विकास किस प्रकार हो रहा है, मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य और बल संचित करने के लिए उन्हें किन चीज़ों की ज़रूरत है, हमसे बच्चे किस प्रकार के व्यवहार की आशा किया करते हैं— जो व्यवहार उनके लिए भी अनुकरणीय बन सके—और जब हमारे विषय में बनाई हुई बच्चों की धारणाएँ झूठी सिद्ध होती हैं तो उन्हें किस प्रकार की घोर निराशा होती है, इन सब बातों को समझना हम शायद अनावश्यक समझते हैं। बच्चों के सम्बन्ध में हमारी अधिकांश कठिनाइयाँ इसी कारण उत्पन्न होती हैं।

## प्रारम्भिक सावधानी का अन्त सुखदायी है

यदि हमने बालक के जन्म ही से उसकी उन्नति और शक्तियों के उचित विकास पर ध्यान दिया है और उसे ठीक दिशा की ओर प्रेरित किया है, तो आगे चलकर हमारे रास्ते में बहुत मामूली कठिनाइयाँ आएँगी। परन्तु हममें बहुत कम लोग ऐसे भाग्यशाली और इतने समझदार होंगे, जिन्होंने जीवन में कभी कोई भूल न की हो। हममें से सभी कभी-न-कभी पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। उधर बालक के साथ बरताव करने का हमारा जैसा आदर्श होना चाहिए, उससे व्यवहार में जरा-सा फर्क हुआ नहीं और हमारी मुश्किलें शुरू हो गई। परन्तु आरम्भ में उन मुश्किलों का कोई स्पष्ट चिह्न प्रकट नहीं होता और उसका ज्ञान तब होता है जब फिर कभी उसी प्रकार की घटना अधिक ज़ोरदार तरीके से दुहराई जाय।

तिस पर भी बिलकुल सम्भव है कि बालक की कोई कुचेष्टा और व्यवहार उसके शैशव-काल में हमारा ध्यान आकर्षित न कर सके, परन्तु जब बच्चा ज़रा बड़ा हो तो वही हमें अखरने लगे। इसी प्रकार यह सम्भव है कि कोई भूली हुई चेष्टा फिर से प्रादुर्भूत हो जाय, खास तौर पर उस समय जबकि सहसा बच्चे को नई परिस्थिति में जाना पड़े, जैसे घर की परिस्थिति से स्कूल में—और ये नई परिस्थितियाँ चेष्टा और व्यवहार के नये और बिलकुल भिन्न प्रकार के आदर्श अपनाने के लिए बालक को बाधित करने लगें और ये आदर्श पहले की तरह

आसान न हों।

आगे चलकर इस पुस्तक में हमें बाल्य-जीवन की उत्तरोत्तर प्रगति के विविध पहलुओं का वर्णन करना ही है, इसलिए, इस सामान्य प्रारम्भिक अवलोकन में हम उस सबका वर्णन नहीं कर रहे हैं। यहाँ हमें केवल इस बात का मोटा-सा नक्शा खींचना है कि घर में बालक का क्या महत्त्व है, हमें उससे क्या-क्या आशाएँ करनी चाहिएँ, और किस प्रकार से हमारी प्रसन्नता अथवा निराशा का कारण बन सकते हैं।

जब कभी हम बालकों के सम्बन्ध में माँ-बाप के कष्ट-वृत्तान्त सुनते हैं, तब उनके कष्ट का एक मूल कारण हमें यह मालूम पड़ता है कि इस विषय में वे प्रायः असाधारण रीति से चिन्तित रहते हैं कि उनके बालकों के सामान्य व्यवहार के सम्बन्ध में उनके दोस्त या मित्र क्या राय कायम करते हैं। मोटे तौर पर माँ-बाप यही चाहा करते हैं कि अपनी शारीरिक और मानसिक प्रगति के लिहाज से उनके बालक उनके लिए प्रतिष्ठा और प्रशंसा का कारण बनें। जब बालकों के व्यवहार और चेष्टाएँ मित्र-मण्डली की नज़रों में पूरे नहीं उतरते और इसके लिए माँ-बाप दोष के भागी ठहराए जाते हैं, तो अपने दोष और भूलों को स्वीकार करने की अपेक्षा माँ-बाप बालकों को ही कसूरवार बताते हैं।

## घर में अनुरूपता

ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते हैं, त्यों-त्यों उनके सम्बन्ध में

बहुत सी कठिनाइयाँ इस कारण उत्पन्न होती हैं कि माँ और बाप एक-दूसरे के अनुरूप और आपस में सहमत नहीं होते। प्यार और परस्पर अनुराग का वातावरण बालक के हर्ष और स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए नितान्त आवश्यक है, और उसका अभाव अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित कर देता है। बालक के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के विषय में माँ की एक राय होती है और बाप अपनी अलग राय रखता है। यह मतभेद उन भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियों का परिणाम होता है, जिनमें उन्होंने अपना-अपना बचपन बिताया होता है। बहुत दफ़ा वे अपने बच्चों से ही ईर्ष्या करने लगते हैं, या बच्चों के लिए आपस में ईर्ष्यालु हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि यदि किसी विषय में एक 'हाँ' करता है तो दूसरा उसे रद्द कर देता है। परिवार में दोनों अपना-अपना हुक्म चलाने का यत्न करते हैं और बच्चों के प्यार को अपने-अपने तक परिमित रखने की चेष्टा करते हैं। बच्चों के दिल को एक-दूसरे से फेरने तक की कुचेष्टा भी की जाती है, और इसके लिए बच्चों के सामने एक-दूसरे की बुराई की जाती है। इन सब अवस्थाओं का परिणाम बच्चों के लिए अत्यन्त भयंकर होता है।

आजकल यह भी प्रवृत्ति पाई जाती है कि बालक के प्रारम्भिक भावुकतापूर्ण जीवन में माँ को इतना अधिक महत्त्व दे दिया जाता है कि बाप का महत्त्व सर्वथा नगण्य-सा रह जाय। निस्संदेह, शैशव-काल में माँ की उपस्थिति बालक के लिए अनि-

वार्य है, परन्तु ऐसी भी माताएँ होती हैं जो स्वयं ही बच्चों का सब कुछ बन जाना चाहती हैं। विशेष रूप से पहले बच्चे के सम्बन्ध में माताओं की प्रायः ऐसी भावना रहती है। इस प्रकार वे जान-बूझकर अथवा बिना जाने-बूझे बाप को इस बात का मौका ही नहीं देतीं कि वह भी बालक की परिस्थिति का एक आवश्यक अंग बनकर उसकी उन्नति में अपना महत्त्वपूर्ण भाग ले सके।

परिणाम यह होता है कि बाप बालक के लिए ईर्ष्यालु हो जाता है, और पत्नी से खीझा-सा रहता है; क्योंकि वह बालक की ओर जरूरत से ज्यादा ध्यान देती है, और उस पर आवश्यकता से अधिक प्यार और समय खर्च कर देती है। यह महसूस करते हुए कि घर में उसकी किसी को भी चाह नहीं है, वह बाहर की वस्तुओं में अपनी अभिरुचि दिखलाने लगता है और कुछ समय पीछे घर में एक पराया व्यक्ति बन जाता है। शिशु भी उसे घर के कामों में खामखाह दखल देने वाला एक आगन्तुक-सा समझने लग जाता है, उससे डरने और डाह करने लगता है। अब बाप और शिशु में माँ के ध्यान को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करने के लिए एक रस्साकशी-सी शुरू हो जाती है। बाप-बेटा दोनों उसके प्यार को अपने तक ही सीमित रखने के लिए बढ़-चढ़कर जोर लगाते हैं, जिससे घर में जबरदस्त प्रतिद्वन्द्विता चल पड़ती है।

प्रायः पहले बालक का आगमन घर में युवा दम्पति की सुख-

चैन की ज़िन्दगी में बखेड़ा खड़ा कर देता है। ऐसी दशा में इसका प्रभाव माँ-बाप और बालक दोनों के ही भावी जीवन पर पड़ता है, उनकी ज़िन्दगी में बेचैनी और कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं। इस दशा में बालक की मानसिक उन्नति के मार्ग में कई प्रकार की विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं।

## अवांछित सन्तान

माँ-बाप की अभिलाषाओं के प्रतिकूल जो सन्तान बिन-बुलाए जन्म लेती है, वह कभी उस प्यार की भागी नहीं बन सकती, जो उस बालक को मिलता है जिसे माँ-बाप दोनों, चाह और इन्तज़ार के बाद उपलब्ध करते हैं। अवांछित बालक के साथ माँ-बाप के व्यवहार में दूसरे बच्चों की अपेक्षा कुछ-न-कुछ फ़र्क़ हो जाता है, भले ही माँ-बाप को स्वयं ऐसा प्रतीत न होता हो, परन्तु बालक आसानी के साथ इसे भाँप लेता है।

भले ही माँ-बाप डींग हाँका करें कि वे इतने सावधान हैं कि बालक को यह मालूम भी नहीं होने देते कि उनकी ज़िन्दगी इस नये बालक की देखभाल और पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी आ पड़ने के कारण कितनी कठिन और दूभर हो गई है। वे ऐसा भी समझने लगते हैं कि ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाता है वे उसके कष्ट भूलते जाते हैं और अब उन्हें वह वास्तव में प्यारा लगने लगा है। परन्तु घर में जब कभी कोई ऐसी घटना हो जाय कि बालक उन्हें भार रूप प्रतीत होने लगे, तो उसके प्रति दबी हुई भावनाएँ फिर जाग उठती हैं और परिणाम यह होता

है कि अवांछित सन्तान के प्रति उनका रुख फिर कठोर हो जाता है।

परन्तु यदि माँ-बाप प्रारम्भ में एक लम्बा-चौड़ा कुनबा बनाने के अनिच्छुक भी रहे हों, तो इसके बिलकुल विपरीत प्रभाव भी हो सकता है। अपने दोष और अपराधीपन की भावना को भुलाने के लिए तथा बालक के जन्म की सम्भावना पर दुःख मनाकर उसका निरादर करने का बदला चुकाने के लिए वे अब उसे ज़रूरत से ज्यादा लाड़-प्यार करते हैं, और उसे अनुचित रूप से 'लाडला' बनाकर बिगाड़ डालते हैं।

जैसा हमने ऊपर कहा है, किसी एक बच्चे के प्रति हमारी भावुकता की प्रधानता हमेशा बालकों की सुशिक्षा के मार्ग में बाधक होती है। इसके कारण छोटी अवस्था में बालक के जो आचरण सर्वथा स्वाभाविक और निर्दोष भाव से होते हैं, उनके सम्बन्ध में भी माँ-बाप की राय बुरी हो जाती है। ऐसे बालक पर घर में बात-बात पर डाँट-फटकार पड़ा करती है। इसीलिए ऐसा बालक, जिसे घर में सदा ढीठ, जिद्दी और कष्टप्रद समझा जाता था, घर से बाहर की परिस्थिति या स्कूल में जाकर नई स्वाधीनता प्राप्त करता है और वहाँ सुखी और प्रसन्न रहने के कारण शीघ्र उन्नति करने लगता है।

अब उसका उठना-बैठना ऐसे लोगों की संगति में होता है, जिनके दिल में उसके प्रति कोई द्वैध भाव नहीं है। उसमें नया और ताज़ा आत्म-विश्वास उत्पन्न हो जाता है और उसे सब

चीजें सुगम, सहज और स्वाभाविक प्रतीत होने लगती हैं, क्योंकि अब पग-पग पर उसे निरुत्साहित करने वाली ईष्यालु माँ-बाप की टोका-टोकी नहीं है, और उसकी चेष्टाओं पर उनकी तरफ से जो रुकावट थी वह दूर हो चुकी है। नई परिस्थितियों में वह बहुत संतुष्ट रहता है। उसके सम्बन्ध में अध्यापकों की रिपोर्टें अब बहुत अच्छी आ रही हैं, और बालक माँ-बाप पर यही प्रकट करना चाहता है कि स्कूल का नया वातावरण उसके लिए कितना रुचिकर है, और जो समय उसका स्कूल में गुजरता है वह उसके लिए कितना सुखदायक और आनन्दवर्धक होता है।

परन्तु यह बात भी माँ-बाप के लिए एक प्रकार के डाह की सामग्री उपस्थित कर देती है। वे ऐसा यकीन नहीं करना चाहते कि बालक की खुशी के लिहाज़ से घर को स्कूल के बाद दूसरा दरजा मिल रहा है, अथवा बालक का प्यार और उसकी अभिरुचियाँ उनसे भिन्न किसी अन्य व्यक्ति की ओर प्रवाहित हो रही हैं।

यह एक बहुत बड़ी मुश्किल है जो, ज्यों ही बालक के लिए घर से बाहर का द्वार खुलता है, आगे आ जाती है। बालक घर से बाहर नये-नये सम्बन्ध गाँठने लगता है। माँ-बाप यह तो अनुभव करते हैं कि वे घर में बालक को वह सुख-चैन और संतोष नहीं दे सके जो उन्हें देना चाहिए था, परन्तु वे यह भी सहन नहीं कर सकते कि जो वस्तु बालक को घर से नहीं मिली, वह उसे बाहर के अपरिचित व्यक्तियों से उपलब्ध होती रहे। बालक के प्यार पर

वे अपने प्रधान स्वत्व का दावा रखते हैं, और कई बार अपनी मूर्खतावश बालक को भी इसकी याद दिलाते हैं कि बालक का यह फर्ज़ है कि वह अपने माँ-बाप को सबसे ज्यादा प्यार करे, और बाहर की अपेक्षा घर में अधिक खुशी अनुभव करे।

## घरेलू जिन्दगी से दूर

हम पहले कह चुके हैं कि पहले पाँच वर्षों में बालक को केवल घरेलू रिश्तों से ही सरोकार होता है। उसके पीछे बालक दूसरे स्थानों पर जाकर उन्हीं अभ्यासों को दुहराता है, जो घर में उसने हासिल किये हैं। वहाँ उसे ऐसा करने के लिए विस्तृत क्षेत्र और अधिक अवसर उपलब्ध हो जाते हैं। बहुत बार घर से बाहर उसके आचरण माँ-बाप की चिन्ता और उद्विग्नता का विषय बन जाते हैं।

परन्तु हमेशा ही ऐसा नहीं होता। कई दशाओं में उसका प्रारम्भिक लालन-पालन इस प्रकार होता है कि घर के साथ बालक जरूरत से अधिक बँध जाता है। उसका खिंचाव हर समय घर की ओर रहता है और बाहर रहते हुए वह कभी खुश नहीं रहता। कई माँ-बाप बालकों पर अपना बहुत ज्यादा प्रभुत्व जमाये रखते हैं। कई माताएँ बड़े अभिमान से कहा करती हैं कि उन्होंने कभी किसी बाहर के व्यक्ति को बालक की प्रसन्नता के लिए कुछ करने का अवसर नहीं दिया, परन्तु इसका परिणाम यह होता है कि ऐसे बच्चे जब कभी कुछ ही घण्टे के लिए किसी मित्र या निकट सम्बन्धी के यहाँ छोड़ दिये जाते हैं तो बहुत जल्दी

माँ-बाप की उपस्थिति के लिए व्याकुल हो उठते हैं। इस तरह माँ-बाप के लिए बड़ी दिक्कत हो जाती है। बच्चे उनके आजादी से घूमने-फिरने पर जबरदस्त बन्धन बन जाते हैं। अगर कहीं दुर्भाग्य से माँ अथवा बाप बीमार पड़ जाय, यहाँ तक कि बालक को उनसे पृथक् रखना आवश्यक हो जाय, तो एक मुसीबत ही खड़ी हो जाती है।

ज्यों-ज्यों समय बीतता जाय, घर के साथ बालक का सम्बन्ध उत्तरोत्तर स्वाभाविक रीति से ढीला होते जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो माँ से ज्यादा चिपटे रहने की बच्चे की आदत एक मुसीबत और माँ के लिए भी एक बोझ-सा बन जायगी। तथापि, माताएँ कभी यह समझने की चेष्टा नहीं करतीं कि बालक को हमेशा अपने साथ चिपटाए रखने के उनके अपने प्रयत्नों ने ही बालक के मन में माता के प्रति एक स्थायी अनुसक्ति (फिक्सेशन) उत्पन्न कर दी है, जिससे अब दोनों को कष्ट हो रहा है।

जब स्कूल जाने के दिन आते हैं तो बालक की मानसिक दशा और भी बिगड़ जाती है। वह घर छोड़कर एक अपरिचित दुनिया में जाने से घबराता है। उसकी तबियत स्कूल की मुसीबत से किसी-न-किसी प्रकार छुटकारा तलाश करती है और इसलिए छोटी-मोटी बीमारियाँ उसे प्रतिदिन आ घेरती हैं। आप देखेंगे कि आपका छोटा लड़का अथवा लड़की—और ज्यादातर लड़का ही—जिसे कई दिन से कभी खाँसी या जुकाम की शिकायत नहीं देखी

गई थी—स्कूल के आरम्भिक दिनों में खाँसी-जुकाम की बीमारी में निरन्तर फँस गया है और इस प्रकार कई हफ़्तों से छुट्टी लेकर घर बैठ रहा है।

तबियत ने जो चाहा था, उसे प्रकृति ने ला उपस्थित किया। बालक स्कूल से छुट्टी और माँ की निरन्तर उपस्थिति का अभिलाषी था। इधर माँ ने भी समझ लिया कि घर से बाहर के लोगों ने उसके प्यारे बच्चे की भली भाँति परवाह नहीं की, क्योंकि वे उसे उसके बराबर प्यार थोड़े ही कर सकते हैं। उसे भय है कि हर मौसम में बाहर खुले में निकलने देने से बालक को तकलीफ़ हो जाती है। पर उसे हैरानी भी है कि पहले भी तो वह स्वयं हर रोज बच्चे को बाहर ले जाया करती थी। अब उसे क्या हो गया है।

परन्तु वस्तुतः मौसम का इस रोग के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। स्कूल में भली भाँति बालक की परवाह भी हुई है। बालक का रोग वस्तुतः मनोवैज्ञानिक है। माँ के साथ बच्चे का गहरा लगाव, उसे घर की सुरक्षित चारदीवारी के अन्दर खींचता है, बीमारी उसे इसका अवसर दे देती है। माँ मन-ही-मन यह सोचकर खुश होती है कि उसका बेटा उसकी ज़रा-सी जुदाई भी सहन नहीं कर सकता। यदि बालक अपरिचितों से बहुत जल्दी घुल-मिल जाय तो माँ मन में दुख मनाती है।

कहने को वह इससे खुश है क्योंकि बालक बाहर वालों के साथ खुश है। परन्तु बिना जताये हुए वह बालक को इसकी सज़ा

इस प्रकार देती है कि अपने प्यार का बड़ा भाग अब वह छोटे लड़के के लिए सुरक्षित कर देती है और इस प्रकार बड़े लड़के के मन में अपने छोटे भाई या बहन के लिए एक प्रकार की ईर्ष्या की की अग्नि प्रज्वलित कर देती है।

इसी प्रकार और भी अनेक जटिल समस्याएँ और कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं, जिनके कारण पहले पाँच वर्ष बालक की उन्नति के लिए जितने आसान थे, उसके पीछे के वर्ष उतने आसान नहीं रहते।

## स्वतन्त्र प्रकृति का विकास

माँ-बाप के साथ स्थायी अनुसक्ति ( फिक्सेशन ) उत्पन्न हो जाने अथवा ऐसे ही किसी अन्य कारण से यदि बालक की मानसिक और भावुक प्रकृति की उन्नति में कोई बाधा ही उपस्थित न हो गई हो, तो हम देखेंगे कि वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता है उत्तरोत्तर स्वतन्त्र होता जाता हैं। वह प्रतिदिन ज्यादा खुदपसन्द और खुदपरस्त होता जाता है। अपने-आपमें अब वह ज्यादा मस्त रहता है और हर बात को अपने ही हित की दृष्टि से देखता है। अब उसकी दिलचस्पी अपने विचारों, अपने खेलों और अपने दिमाग़ की कल्पनाओं में ज्यादा हो जाती है। नये-नये दोस्तों, स्कूल के नये साथियों, शिक्षकों और उन सब व्यक्तियों और बालकों में उसका मन ज्यादा लगा रहता है जो घर से बाहर आने के बाद उसके सम्पर्क में आते हैं।

अपने मानसिक और शारीरिक सामर्थ्य के सम्बन्ध में उसे

नित्य नई-नई बातें मालूम होती हैं। अपनी रचनात्मक प्रवृत्तियों को प्रकट करने के लिए वह नया मार्ग बनाता है और प्रत्येक काम स्वयं करने का ढंग सीखना चाहता है।

वह अपनी उत्साहपूर्ण चेष्टाओं द्वारा नये-नये परीक्षण करता हुआ प्रायः कई प्रकार की कठिनाइयों में फँस जाता है। इसे भली भाँति न समझकर हम कह देते हैं—"बालक बहुत शरारतें करता है।" परन्तु वस्तुतः यह इस बात का एक निश्चित चिह्न है कि बालक के मन, बुद्धि और शरीर की सब शक्तियाँ उन्नति कर रही हैं। उसका क्षेत्र विशाल हो रहा है और आसपास की दुनिया को वह भली भाँति जान लेने की चेष्टा कर रहा है।

विचार-शक्ति के विकास और विस्तार के साथ-साथ वह अधिक सचेत और चंचल-प्रकृति होता जाता है। अपनी शान्त न हो सकने वाली ज्ञान-पिपासा को बुझाने के लिए वह माँ-बाप पर सवालों की बौछार-सी लगा देता है, उन्हें परेशान कर डालता है, उन्हें थका देता है; क्योंकि माँ-बाप को उसके प्रत्येक प्रश्न का जवाब देना पड़ता है और वह भी-इस प्रकार कि बालक की बुद्धि उस उत्तर को भली भाँति ग्रहण कर सके।

वयस्क पुरुषों का दिमाग़ निश्चेष्ट होकर मलिन होने लगता है। उन्हें उतने ही ज्ञान की तलाश होती है जितना उनके दैनिक व्यवहार के लिए आवश्यक होता है। अपने पेशे से सम्बन्ध रखने वाली बातों तक ही उनकी जिज्ञासा का दायरा परिमित होता है। इसलिए बालक के अनेक प्रकार के प्रश्न वयस्क पुरुषों के लिए

एक कठिन परीक्षा बन जाते हैं। इसलिए कभी-कभी जब बालक अपने ज्ञान-विस्तार के लिए प्रश्न-पर-प्रश्न करके उन्हें ज्यादा परेशान कर देता है तो वे खीझ उठते हैं और डपटकर उसे चुप कर देते हैं—"सताओ मत, ज्यादा शैतान और गुस्ताख़ मत बनो।"

आगे चलकर इस पुस्तक के किसी अध्याय में हम बालक की मानसिक चेष्टाओं और उसके सवालों का जिक्र छेड़ेंगे। यह विषय बहुत महत्त्व का है और इसकी ज़रा विस्तार से छानबीन करना आवश्यक है। माँ-बाप को प्रायः ऐसे प्रश्न ज्यादा परेशान करते हैं जिन प्रश्नों का सम्बन्ध परिवार में नये बच्चे के जन्म, लड़के-लड़कियों के देह और अंगों के फ़र्क और माँ-बाप तथा बच्चे के अंगों में स्वाभाविक फ़र्क के साथ होता है। परन्तु इन प्रश्नों के उत्तर जिस तरीक़े से दिये जायँगे उस तरीके का प्रभाव भविष्य में बालक के ज्ञानोपार्जन, उसकी शिक्षा और जीवन-चर्या के चुनाव पर बहुत अधिक पड़ता है।

ऊपर हमने सरसरी तौर पर कुछ उन कठिनाइयों का वर्णन किया है जो पाँच वर्ष की आयु के पश्चात् बालक के जीवन में उपस्थित हो जाती हैं। आइये, अब हम इन कठिनाइयों के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् अधिक विस्तार से विचार करें और जाँचें कि यह छानबीन हमें कहाँ तक बालक के सम्बन्ध में सहायक और मार्ग-निर्देशक बन सकती है।

: २ :

## लाड-दुलार या डाँट-फटकार

प्रायः ऐसा देखने में आता है कि जब बालक पाँच वर्ष का हो जाता है तो माँ-बाप, जिन्होंने अब तक बालक को हर बात में खुली छुट्टी दे रखी थी कि वह जो चाहे करता फिरे, अब सहसा फैसला कर लेते हैं कि बालक को कठोर नियन्त्रण में रखने की जरूरत है।

अब होता क्या है? माँ-बाप की आदत और उनके स्वभाव में इस अचानक और अद्भुत परिवर्तन पर हैरान होकर बच्चे घबरा-से जाते हैं और उन्हें कुछ सूझ नहीं पड़ता कि इस नये व्यवहार के बदले कैसा व्यवहार करें।

छुटपन से ही माँ-बाप के समर्थन अथवा निषेध के आधार पर ही बालक सुरक्षा और अनिश्चयात्मकता, प्यार और भय इत्यादि में तमीज़ करता रहा है। बालक के अभिभावकों के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि वे स्पष्ट शब्दों में किसी कार्य के सम्बन्ध में अपनी अप्रसन्नता प्रकट करें। कोई ऐसा शब्द जो असहमति का सूचक हो, केवल सिर हिला देना अथवा सहमति-सूचक मुस्कराहट का अभाव—इन सब लक्षणों से बालक आपके भावों को भाँप लेता है। उतने से ही उसकी मुखाकृति विकृत हो जाती है और

वह सहसा रोनी सूरत बना लेता है, और फिर जब तक माँ दुबारा दिलासा नहीं देती उसके आँसू बहते चले जाते हैं।

उस परिचित आत्मीय का चेहरा जो पहले हमेशा प्यार से मुस्कराता रहा हो, नन्हें बालक की नजरों में तनिक-सी क्रोध की छाया पैदा करता है और वह सोचता है मानो उसे प्यार करने वाला अब कोई नहीं रहा। वह अपने-आपको बिलकुल अकेला महसूस करने लगता है। उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो उसे प्यार करने वाला व्यक्ति कहीं चला गया है और उसके स्थान पर कोई अपरिचित नवागन्तुक आ गया है। बालक रोता है। वह फिर पहले व्यक्ति को वापस लाना चाहता है।

## माँ-बाप के प्रबल हथियार

इन कारणों से हमें बालक के प्रति उसके किसी कार्य पर प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता प्रकट करने के इन दो तीखे और प्रबल हथियारों का प्रयोग बहुत ही विचारपूर्वक करना चाहिए। बालक के लिए ये बहुत ही खास मतलब रखते हैं। बालक को हर बात में पूरी स्वच्छन्दता दे देना तो सम्भव नहीं है। आप उसे यह छुट्टी तो कभी नहीं दे सकते कि वह जो चाहे करता चला जाय और वह अपनी हर इच्छा पूरी कर ले। यदि आप ऐसी छुट्टी दिये रखेंगे तो उसकी तबियत में खुदपसन्दी बहुत अधिक बढ़ती चली जायगी और जब कभी उसकी मर्जी पर कोई रोक लगाना आवश्यक भी हो जायगा, आपका ऐसा करना उसे सर्वथा असह्य होगा और आप सुगमता से उसे किसी बात के लिए

निपेध न कर सकेंगे।

आजकल कहीं-कहीं ऐसा सिद्धान्त पेश करने का रिवाज-सा चल पड़ा है कि बालकों पर बिलकुल कोई रोकटोक या वन्दिश न लगानी चाहिए और उन्हें सर्वथा अपनी मरजी पर छोड़ देना चाहिए। इन लोगों का कहना है कि टोकाटोकी करते रहने से उनकी कई स्वाभाविक इच्छाएँ दब-सी जाती हैं और बड़े होने पर दबी हुई अथवा निरुद्ध (रिप्रेस्ड) इच्छाएँ कई प्रकार के विकृत रूपों में फूट पड़ती हैं। परन्तु जब हम सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं तो इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि बालक को ऐसी खुली छुट्टी दे देना न तो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित है और न ऐसा करने से घर में शान्ति बनी रह सकती है।

हममें से कई लोगों को प्रायः ऐसे प्रौढ़ व्यक्तियों और बालकों का निरीक्षण करने का अवसर मिला होगा जो आगे चलकर जीवन में इसलिए असफल रहे, क्योंकि उनकी मानसिक दशा कुछ अव्यवस्थित हो गई थी और उनमें कुछ मनोवैज्ञानिक दोष उत्पन्न हो गए थे। ऐसा होने का मूल कारण प्रायः यही देखा गया है कि ऐसे व्यक्तियों को पहले तो शैशव में हर तरह की छुट्टी दी जाती रही। पहले पाँच वर्षों में उनकी अन्तः-प्रेरणाओं पर कोई रोक और पाबन्दी बिलकुल न लगाई गई। परन्तु ज्योंही पाँचवें या छठे वर्ष में उन्होंने पग रखा, अचानक उनके आजादी के दिन समाप्त हो गए और रह-रहकर उनकी चेष्टाओं पर रोकटोक आरम्भ हो गई। उनकी सीमा निर्धारित

होने लग गई और पाबन्दियाँ ठोंसी जाने लगीं। चाहे तो ऐसा स्कूल-जीवन में प्रवेश के कारण हुआ—स्कूल-जीवन का नियन्त्रण भी तो बालक के लिए एक नया बोझ है—और चाहे ऐसा इसलिए हुआ कि माँ-बाप यह सहन नहीं कर सकते थे कि घर में उनके सारे बच्चे दिन-भर आपस में लड़ते-झगड़ते रहें और हर वक्त ऊधम मचाते रहें।

इस प्रकार इस आयु में जब बालक की स्वच्छन्दता पर सहसा अंकुश रखने का प्रयत्न किया जाता है और उसे बड़ों की आज्ञा मानने के लिए मजबूर करने के उद्देश्य से कठोर उपाय काम में लाए जाते हैं तो उससे स्वाभाविक इच्छाओं का अधिक भयंकरता से निरोध (रिप्रेशन) होता है। परन्तु इसके विपरीत, यदि प्रारम्भ से ही बालक की मानसिक वृत्तियों को निरन्तर कोमल रीति से उचित दिशा में प्रेरित करते चले जायँ, तो यह कठिनाई उपस्थित न होगी।

## सामाजिक शिक्षा

छोटी आयु में बालक अपने ही आप में मस्त रहता है। उसे दूसरों से कुछ सरोकार नहीं होता। परन्तु बड़े होकर उसे जिस समाज का अङ्ग बनकर जीवन बिताना है, उस समाज के साथ समता और अनूकूलता कैसे स्थापित की जाय ? ऐसी अनूकूलता स्थापित करना कहाँ तक सुगम होगा यह इस बात पर निर्भर है कि बालक के माँ-बाप स्वयं किस हद तक समाज के साथ समुचित सम्बन्ध स्थापित कर पाए हैं, अथवा वह अभी भी दिन-प्रति-

दिन उत्पन्न होने वाली भावुकता की लहरों में बह जाते हैं, अथवा अपनी निरन्तर बदलने वाली मनोदशाओं और अन्तःप्रेरणाओं से झटपट प्रभावित हो जाते हैं।

यदि सावधानी से बालकों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करना हो, तो सबसे पहले हमारे पास कोई जाँचा हुआ कार्यक्रम (प्लान) होना चाहिए। हमें मालूम होना चाहिए कि बालक को किस बात की कहाँ तक अनुमति देनी है और कहाँ आकर उसकी स्वतन्त्रता पर सीमा बाँध देनी है। यह बच्चे के साथ घोर अन्याय है कि जब कभी तो हम खुश बैठे हों, हम बच्चे को हर बात करने की आज्ञा दे दें और जब किसी और वक्त थके-माँदे और चिन्ताओं में डूबे अथवा दुखी बैठे हों, हम बालक की उसी प्रकार की चेष्टाओं के लिए उसे दबकाने और डाँटने-डपटने लग जायँ और व्यर्थ में उसे सज़ा तक दे डालें। इसका परिणाम यह होता है कि बालक कभी भले-बुरे की पहचान नहीं कर पाता। वह यह जान ही नहीं सकता कि उसे कौनसा काम करना चाहिए और कौनसा नहीं। वह आपके चेहरे पर टकटकी लगाकर ही देखता रहेगा और आपकी आवाज पर कान जमा देगा, ताकि वह आपकी क्षण-क्षण बदलने वाली मनोदशा का निरन्तर अन्दाज़ा लगाता रह सके और उसके अनुसार यह निर्णय कर सके कि वह कहाँ तक आगे बढ़ सकता है। इस दशा में वह स्वभावतः बेकरार और डरा-डरा-सा रहता है और उसकी स्वाभाविक उन्नति के लिए जिस आह्लाद-पूर्ण विश्वास और बेफिक्री के वातावरण की आवश्यकता है, वह

उसे उपलब्ध ही नहीं होता।

बालक यदि स्वाभाविक खुशी में हो तो वह खुद ही धीरे-धीरे अपनी इच्छाओं का परित्याग करके शिक्षक की इच्छा के अनुकूल चलने के लिए उद्यत हो जाता है। वह जब शिक्षक को प्यार करने लगता है तो उसकी इच्छा के अनुकूल चलने में खुशी महसूस करता है। इसलिए सबसे ज्यादा आसान और अच्छी राह यही है कि वह बालक के साथ ऐसा वात्सल्य सम्बन्ध उत्पन्न कर लें कि बालक खुशी के साथ अपनी इच्छा से शिक्षक के बताये हुए मार्ग पर चलना पसन्द करने लगे। जब प्यार इतना बढ़ जाता है कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं को अपनाकर उसे अपनी ही इच्छा बना लेता है तो यह चित्त-वृत्तियों का निरोध (रिप्रेशन) नहीं कहलाता, बल्कि यह वृत्तियों का एकीकरण (आईडेन्टीफिकेशन) है। अगले अध्याय में इस विषय पर हमें कुछ अधिक कहना है।

परन्तु इसके विपरीत यदि बालक यह सीखता है कि अमुक काम उसे इसलिए नहीं करना क्योंकि वैसा करने से लोग नाराज होते हैं, तो इस दशा में वह भय के वशीभूत होकर आज्ञा-पालन करना सीखता है। ऐसी दशा में लज्जा अथवा भय के कारण अथवा अपराध की भावना (सैन्स ऑफ गिल्ट) के वशीभूत होकर वह अपनी स्वाभाविक अन्तःप्रेरणाओं का निरोध तो करता है, परन्तु उसकी निरुद्ध प्रकृति आज्ञा-भंग के लिए किसी अवसर की तलाश में रहती है—वह लुक-छिपकर वैसा काम करने के लिए

लालायित रहता है, अथवा जब उसके समीप कोई और कोमल प्रकृति वाला व्यक्ति उपस्थित हो, जो ऐसे मामलों में ज़रा नर्मी से पेश आता हो, तो बालक उसकी परवाह किये बग़ैर वैसा काम करने लग जाता है।

## बाल-चरित्र को नष्ट करना

यहाँ हमें बालक के चरित्र को नष्ट करने की बहुत ही सीधी राह नज़र आती है। जहाँ माँ-बाप में परस्पर वैमनस्य हो, उनमें से एक किसी बात से बालक को रोकता, डाँटता-फटकारता और वैसी बात बार-बार करने पर सज़ा देता है तो बालक रोता-चिल्लाता अपनी दुःख-दर्द की कहानी दूसरे को जा सुनाता है। यहाँ उसे लाड-प्यार से पुचकारकर गोद में ले लिया जाता है, दिलासा दी जाती है और बालक जो कुछ करना चाहता था उसे करने की अनुमति दे दी जाती है।

बालक की प्रकृति पर इसका प्रभाव यह होता है कि वह माँ-बाप में से एक को दयार्द्र और स्नेहशील और दूसरे को कठोर तथा रूक्ष प्रकृति वाला खयाल करने लगता है। एक को प्यार करने लगता है और दूसरे को नफ़रत करता है। यदि उसे समय-समय पर दोनों को खुश करके अपना काम निकालना आवश्यक जान पड़े तो वह व्यवहार के दो नमूने बना लेता है। एक के सामने एक प्रकार का व्यवहार करता है और दूसरे की उपस्थिति में दूसरे प्रकार का व्यवहार करता है।

परन्तु इससे पहले बालक के लिए एक सन्देह की दशा आती

है, क्योंकि उसे अनुभव से पता लगता है कि वह माँ-बाप दोनों में से एक पर भी हमेशा के लिए ऐसा विश्वास नहीं कर सकता कि अमुक कार्य के लिए उसे उनकी अनुमति मिल ही जायगी। यदि उसके माता-पिता दोनों तुनक-मिजाज हैं, तो वे सहसा अकारण ही क्रोध में आ जायँगे और जिस बात की अनुमति वे स्वयं ही बच्चे को देते आए हैं, बिना पहले कोई सूचना दिये उसे एकदम मना कर देंगे।

पहले पाँच वर्षों में बालक अपने घर के तौर-तरीकों, चाल-ढाल और व्यवहार के आदर्शों को समझ लेता है। इन तौर-तरीकों और आदर्शों के प्रति उसका अनुकूल अथवा प्रतिकूल आचरण इस बात से प्रभावित होता है कि उसकी अन्त:प्रेरणाएँ कहाँ तक प्रबल हैं और उसके माँ-बाप उनका पालन करवाने में कहाँ तक सबल अथवा निर्बल हैं। यदि माँ-बाप की तबियत निरन्तर परिवर्तनशील है, और बच्चों के तङ्ग करने पर वे शीघ्र उनके सामने झुक जाते हैं तो बच्चा उन्हें बार-बार तङ्ग करके अपने लिए रास्ता निकालता है। अब वे तङ्ग आकर शिकायत करने लगते हैं कि बालक बड़ा ही स्वच्छन्द और खुदपसन्द बनता जा रहा है। उसे सुधारने के लिए वे उसे स्कूल भेजने का निश्चय करते हैं, जहाँ उसे अत्यन्त कठोर नियन्त्रण का पालन करना होता है।

स्कूल भेजे जाने पर बालक ऐसा महसूस करता है मानो सबने उसे छोड़ दिया है। माँ-बाप ने उसे प्यार करना त्याग दिया है तभी तो उन्होंने उसे अपने से दूर स्कूल में रखना पसन्द किया

है—भले ही यह दिन के कुछ घण्टों के लिए ही क्यों न हो।

यदि स्कूल भेजने के साथ ही घर में एक नये बालक का जन्म हो तो अवस्था ज्यादा बिगड़ जाती है। बालक पर दुहरी चोट पड़ती है। उसे गुस्सा आता है और नवजात शिशु ही उसका सबसे अधिक अप्रीति-भाजन बन जाता है, जिसके कारण ही उसे घर से बाहर निकलना पड़ा है। अब वह माँ-बाप के प्रति उदासी-नता का भाव धारण कर लेता है, स्कूल से उसे नफ़रत हो जाती है और उसके साथ वहाँ के सब पदार्थों और व्यक्तियों से भी। प्रत्येक बात में वह एक विद्रोही बन जाता है और सबके लिए एक मुसीबत-सी पैदा कर देना चाहता है, यहाँ तक कि थककर स्कूल वाले उसे अपमानपूर्वक स्कूल से वापस घर भेज देते हैं।

परन्तु यदि स्कूल के अध्यापकों ने बुद्धिमत्ता और कुशलता-पूर्वक बालक के ठेस खाये हुए भावों को भली भाँति समझ लिया, और समझ-बूझकर उससे कैसा सलूक करना है इसका निश्चय कर लिया, तो यकीन रखिए, उसकी तकलीफ़ शीघ्र ही दूर हो जायगी। वह स्कूल को ही धीरे-धीरे अपना नया घर बना लेगा, अध्यापकों को ही माँ-बाप की जगह दिल में बिठा लेगा और उनके नये आदर्शों को अपनाकर उन पर ही चलना आरम्भ कर देगा। परन्तु इसके साथ ही उस पर से घर का सब असर भी जाता रहेगा। बालक यह सीख जायगा कि उसके माँ-बाप विश्वास के योग्य नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने वह प्यार की जगह, जिस पर कभी इस बालक का एकाधिकार हुआ करता था, अब नये शिशु

को दे दी है। इसलिए वे अब कभी इस बालक को प्यार न कर सकेंगे।

## घर से बाहर पहला कदम

यदि पहले पाँच वर्षों में बालक का पालन-पोषण ऐसे घर में हुआ हो जहाँ परस्पर प्यार और विचार साम्य है, जहाँ मानसिक उद्वेगों और आवेशों (इमोशन्स) को भली भाँति संयत रखा जाता है, वहाँ आप देखेंगे कि बालक माँ-बाप और घर से विदायगी का पहला पग अत्यन्त शान्त और स्वाभाविक रीति से बाहर धरता है और उसकी मानसिक दशा में कोई विक्षेप उत्पन्न नहीं होता। परन्तु यदि घर में निरन्तर उत्तेजना, आवेश और भावोद्गारों के तूफ़ान उठा करते हैं और व्यवहार भली भाँति संयत नहीं है, तो हमें इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि बालक के ये वर्ष कई प्रकार की मनोवैज्ञानिक विषम परिस्थितियों, परेशानियों और मुसीबत के होंगे।

यदि बालक के माँ और बाप, दोनों में से कोई एक ही उसके पालन-पोषण के लिए जिम्मेदार हो, दूसरा उपस्थित ही न हो, अथवा माता और पिता में परस्पर कोई प्यार न हो, तो इसका परिणाम यह होगा कि बालक को अपने हिस्से के प्यार से ज्यादा प्यार मिल जायगा; क्योंकि घर में अनुपस्थित माँ अथवा बाप को जो प्यार मिलना चाहिए था वह भी अब बालक के हिस्से में आएगा। ऐसी दशा में उसे जरूरत से ज्यादा प्यार मिल गया, और वह भी एक ही प्रकार का। शायद वह प्यार भी उसमें मिल गया है जो

दम्पति में दूसरे वयस्क साथी को मिलना चाहिए था, और इसलिए वह उस प्रकार का प्यार नहीं है जिस तरह का प्यार बालक को मिलना चाहिए था। उसकी माँ अथवा बाप, दोनों में से जो कोई भी अब उसका अभिभावक है, वह उसे अपने पति अथवा पत्नी के स्थान पर रख रहा है, और बालक समझ-बूझकर अथवा बिना जाने-बूझे घर में 'प्रौढ़' व्यक्ति का-सा आचरण करने लगता है।

जहाँ ऐसा होता है वहाँ प्रायः बालक अपने अभिभावक के प्रति बहुत शीघ्र भावावेश की सीमा को लाँघ जाता है और असंयत हो जाता है। उसे अपनी नज़र से ओझल नहीं होने देना चाहता। यदि उसके किसी कार्य पर अभिभावक नाराज़ हो तो वह एक कुहराम-सा मचा देगा और तब तक आपे से बाहर रहेगा जब तक अभिभावक उसे क्षमा करके फिर पहले का-सा प्यार न करने लगे। जब तक ऐसा न होगा, तब तक बालक न तो सोएगा—जागता हुआ बिस्तर पर करवटें बदलता रहेगा—रोता रहेगा—जब तक या तो अभिभावक कमरे में आकर उसे प्यार-पुचकार न करे, अथवा उसे स्वयं थकावट से नींद न आ घेरे।

घर में बाहर से कोई अभ्यागत आ जाय, अथवा माँ-बाप अधिक समय परस्पर अलग रहने के बाद घर में इकट्ठे हुए हों, यह अवसर भी ऐसे बालक के लिए असहनीय अकेलेपन का होता है। उसकी तब भी वही उपर्युक्त दशा हो जायगी। रोना, चिल्लाना, बार-बार पानी माँगना अथवा अकेले अँधेरे में डर लगने का बहाना

करना, ये सब उपाय हैं जिनका आश्रय लेकर वह अभिभावक को अभ्यागत से अलग रहने के लिए मजबूर कर देगा, और तब चैन लेगा और तभी अभिभावक को चैन लेने देगा जब वह उसके समीप लौट आएगा।

छोटी लड़कियाँ इस प्रकार के एक रीति से प्रारम्भिक 'हिस्टी-रिया' अथवा उन्माद के दौरों की उसी प्रकार शिकार हो जाती हैं जिस प्रकार छोटे लड़के। लड़कियों का ऐसा लगाव प्रायः बाप के साथ होता है, परन्तु सुलाने के लिए माँ की उपस्थिति प्रायः उसी प्रकार आवश्यक हुआ करती है जिस प्रकार उनकी शिशु अवस्था में हुआ करती थी। प्रारम्भ में तो छोटी लड़कियाँ भी अपने भाइयों की तरह माँ को ही ज्यादा प्यार किया करती हैं और प्रति-क्षण माँ के लाड-प्यार और उसकी उपस्थिति की इच्छुक रहा करती हैं। यदि उनकी उन्नति स्वाभाविक रीति से हो रही है तो ज्यों-ज्यों वे बड़ी होती जाती हैं, वे अपना ज्यादा प्यार बाप के साथ जोड़ लेती हैं। परन्तु लड़का तो सारी उम्र माँ का ही लाडला बेटा बना रहता है।

इस छोटी लड़की का प्यार बाप की ओर क्यों उलट पड़ता है? इसका कारण बतलाना कठिन है। कई बार घर में दूसरे बालक के जन्म के साथ ऐसा हुआ करता है। लड़की ऐसा महसूस करती है कि माँ ने उसे छोड़ दिया है—जिसके पास उसे प्यार करने के लिए अब न समय है और न उतनी प्यार करने की इच्छा ही। लड़की और उसका बाप दोनों ही एक प्रकार से लड़की

की माँ के प्यार से इस समय किसी हद तक वंचित हो गए हैं—माँ का अधिक समय और उसका अधिक ध्यान नवजात शिशु की सेवा-शुश्रूषा में जो खिंचा जा रहा है। इस विषय में दोनों एक ही प्रकार के दुख के समभागी हैं और एक ही दुख के भागीदार साथी होने के नाते दोनों परस्पर ज्यादा करीब हो जाते हैं। दोनों पक्के साथी बन जाते हैं। लड़की अब पिता की इतनी परवाह करने लगती है कि माँ को कई बार उस समय निराशा-सी होती है जिस समय वह ज़रा खाली होकर इस योग्य हो जाती है कि घर के सब व्यक्तियों में भली भाँति दिलचस्पी ले सके।

उपर्युक्त परिवर्तन कुछ इसलिए भी आ जाता है क्योंकि शिशु-काल के कुछ वर्षों के पश्चात् बाप अपनी छोटी बच्ची में ज्यादा दिलचस्पी लेना आरम्भ कर देता है, और माँ की अपेक्षा घूमने-फिरने की ज्यादा स्वाधीनता दे सकता है।

## दाँत निकलने का दुबारा कष्ट

सभी माँ-बाप प्रायः इस बात को स्वीकार करते हैं कि पाँच-छः वर्ष की अवस्था का होकर बालक कुछ ज्यादा ही तकलीफ देने लग जाता है। परन्तु कुछ ऐसा भी विश्वास पाया जाता है कि दुबारा दाँत निकलने तक यह कष्ट रहता है, परन्तु उसके बाद सब ठीक-ठाक हो जाता है।

इस बात में सचाई कितनी है यह तो कहना बहुत कठिन है। परन्तु इस आयु में बच्चे की मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल इतनी ज्यादा होती है कि यह कहना कठिन हो जाता है कि इस सब में

अस्थायी दाँतों का स्थान स्थायी दाँतों द्वारा लिये जाने की घटना का कितना प्रभाव हो सकता है।

प्रायः यही माना जाता है कि दूध के दाँत बिगड़ते-बिगड़ते समय पाकर स्वयं ही गिरते जाते हैं। पहले इस आयु के बच्चों को कोई माँ-बाप दाँतों के डॉक्टर के पास न ले जाते थे। खोखले और पीड़ा देने वाले दाँतों की कोई खास फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं समझी जाती थी। यदि कभी दाँत में दर्द होता तो आशा की जाती थी कि बच्चे उसे बरदाश्त करें। ज्यादा-से-ज्यादा माँ-बाप उसके दाँत में कोई दर्द-मार दवा रख देते थे, और उसका मुँह-सिर लपेटकर लिटा देते और चुपचाप दर्द बरदाश्त करने के लिए कहते।

अब हमें मालूम है कि यदि और किसी कारण से नहीं तो कम-से-कम दूसरे दाँतों की रक्षा की दृष्टि से ही हमें बच्चे के दाँतों की कुछ ज्यादा फ़िक्र करनी चाहिए। लगातार पीड़ा देने वाला, अन्दर से खाया हुआ खोखला दाँत व्यर्थ में बालक को कष्ट देगा, उसकी नींद ख़राब करेगा और रात-भर उसे बुरे-बुरे स्वप्न आया करेंगे। यह भी सम्भव है कि मानसिक दृष्टि से इस पीड़ा के कारण उसके अन्दर निराशा की भावना जागृत हो। कारण यह है कि बालक को जिस माँ-बाप पर पूरा-पूरा भरोसा था, वे भी सर्वथा अशक्त हो गए हैं और इस कष्ट से उसे मुक्ति नहीं दिला सकते।

जब पहला दाँत गिरता है तो बालक सहम जाता है। उसका

एक अंग खो गया। कई बार बालक हैरान-सा होता है कि क्या सचमुच उसकी जगह और दाँत निकल आएगा ? कई दफ़ा बच्चे गिरे हुए दाँत को बहुत सँभालकर अपने पास रख छोड़ते हैं। बालक को यह भी महसूस होता है कि उसकी मुखाकृति बिगड़ गई और बोलने में उसे कष्ट होता है। वह शब्दों का उच्चारण भली भाँति सुगमता से नहीं कर सकता।

उसके हमजोली प्रायः उससे ठट्ठा करते हैं। उसे 'दन्दबोड़ा' आदि नामों से पुकारा जाता है। उसकी सूरत और बोलचाल दोनों की नकल उतारकर मजाक उड़ाया जाता है। बालक इसे बहुत ही नापसन्द करता है कि उसका मज़ाक उड़ाया जाय। ( यद्यपि कुछ माँ-बाप का यह ग़लत विश्वास होता है कि मज़ाक उड़ाकर बालक के बहुत से अवगुण छुड़ाए जा सकते हैं। ) बालक को अजीब-अजीब बातें कही जाती हैं, यथा—'यदि तुम खाली जगह पर जीभ न छुआओगे तो तुम्हारे दाँत सुनहरी उगेंगे।' जब तजुर्बे से वह बाद में देखता है कि माँ-बाप की कही बात गलत साबित हुई है तो उन पर से उसका विश्वास उठ जाता है।

इस आयु में आकर बालक की वाणी में भी कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है। बालक कई शब्दों के उच्चारण ग़लत करने लगता है अथवा तुतलाने लगता है। ये दोष सुगमता से उससे नहीं छूटते। हमें अत्यन्त सावधान रहना चाहिए कि इस अवस्था में ऐसे बालक से कैसा सलूक करना है। कहीं ऐसा न हो कि बालक को कोई ऐसी ख़राब आदत हम डाल दें, अथवा उसके

अन्दर कोई असाधारण संकोच उत्पन्न कर दें, जो बाद में दूर न किया जा सके।

इस अवस्था में बालक कुछ उन बातों को भी दुहराता है जो प्रथम बार दाँत निकलते समय वह किया करता था। सम्भव है, वह चाहता हो कि उसकी माँ उसे वैसा ही प्यार करे जैसा कि पहले दाँत निकलते समय वह किया करती थी। वह वैसे ही उसकी तबियत बहलाने के अनेक-अनेक उपाय करे। माँ को चाहिए कि बालक को इन बातों से बिलकुल वंचित तो न रखे, परन्तु उसकी इस अवस्था की पीड़ा और कष्ट पर ज्यादा दौड़-धूप और शोर-शराबा करना, घबराहट और चिन्ता प्रकट करके इसे एक असाधारण घटना का रूप दे देना बालक को बिगाड़ देता है।

: ३ :

## बड़ों का अनुकरण

हमने पिछले अध्याय में इस बात का जिक्र किया है कि बालक कुछ दशाओं में अपनी वैयक्तिक इच्छाओं और मनमानी करने की वृत्ति को त्यागकर अपने आसपास वालों की इच्छाओं को अपना लेता है। उसके हित की दृष्टि से यही उचित है कि वह ऐसा भयवश न करे, बल्कि अनुरागवश करे। इसका अर्थ यह है कि ऐसी दशा में एकीकरण (आईडेण्टिफिकेशन) का मनोवैज्ञानिक यन्त्र कार्य करने लग गया है, जिसमें बालक भली भाँति दूसरे लोगों का अनुकरण करने लग जाता है।

हम सब यह तो भली भाँति जानते ही हैं कि बालक दूसरों का अनुकरण करने के लिए किस प्रकार उद्यत रहा करते हैं। वे बड़ों का भी अनुकरण करते हैं और समवयस्क बालकों का भी। माँ, बाप, चचा, ताऊ और अन्य रिश्तेदारों का विविध प्रकार का लिबास पहनकर वे उनकी नकल किया करते हैं, और प्रायः माँ-बाप और अध्यापक का नाट्य करते हैं। एक बार इन्हें स्कूल की जिन्दगी आरम्भ कर लेने दीजिए, फिर माँ-बाप और अध्यापकों की विविध विशेषताओं, उनके स्वभाव और व्यवहार की अद्भुत बातों की वे ठीक-ठीक नकल उतारकर दिखाएँगे।

अनुकरण करने की बालक में जो प्रवृत्ति है, उसके कारण हम बहुत बार यह समझने लगते हैं मानो बालक में माँ-बाप के साथ जितनी समानताएँ हैं वे सब-की-सब पैतृक संस्कार द्वारा प्राप्त की हुई हैं; परन्तु 'एकीकरण' का उपर्युक्त सिद्धान्त उन सब प्रवृत्तियों और चेष्टाओं की ठीक-ठीक व्याख्या कर देता है, जिन्हें हम समझते हैं कि ये सब बातें उसने अपने परिवार से स्वाभाविक रीति से अनायास प्राप्त की हैं। हम वंश-परम्परा के संस्कारों को मानने पर उसी दशा में मजबूर होते हैं, जब बालक माँ-बाप की ऐसी विशेषताएँ भी अपने में प्रकट करता है जिनसे जीवन में वह अभी तक बिलकुल अपरिचित है, जिन्हें उसने पहले कभी नहीं देखा और न कभी उनके विषय में सुना है। ऐसी दशाओं में हमें वंशानुक्रम के प्रभाव को मानना पड़ता है।

बालक ज्यों-ज्यों उन्नति करते जाते हैं, वे बोलने-चालने के तरीकों, मुख-मुद्रा और भाव-भंगी तथा चाल-ढाल में माँ-बाप और शिक्षक का पूरा अनुकरण करते हुए दिखाई देते हैं। वे उनकी आदतों और उनके दृष्टिकोण को भी अपना लेते हैं।

### अच्छे दृष्टान्त की शक्ति

इसी कारण माँ-बाप का परस्पर एक-दूसरे के प्रति व्यवहार और उनका बालक के प्रति व्यवहार बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यदि माँ-बाप एक-दूसरे के प्रति उदार और कोमल हैं, घर के दूसरे लोगों और अभ्यागतों के साथ आदर-सम्मान का व्यवहार करते हैं, स्वभाव से सत्यभाषी, नम्र तथा सुसभ्य हैं, सदा

हँसमुख और प्रसन्न-वदन रहते हैं, तो वे देख लेंगे कि ये सब गुण अनायास आप-से-आप उनकी सन्तान में प्रादुर्भूत होते जायँगे। परन्तु डाँट-फटकार द्वारा ये गुण कभी बालकों में उत्पन्न नहीं किये जा सकते।

इसके विपरीत जो माँ-बाप अथवा शिक्षक सदा दूसरों की कुरुचिपूर्ण आलोचना में मग्न रहते हैं, सदा लोगों के छिद्रान्वेषण में आनन्द अनुभव करते हैं, जो छोटी-छोटी तुच्छ बातों पर खीझ उठते हैं और बच्चों को व्यर्थ खिझाते रहते हैं, उन्हें शीघ्र ही मालूम हो जायगा कि ये दुर्गुण बालकों में उसी प्रकार सम्पूर्णतया प्रतिबिम्बित मिलेंगे जिस प्रकार आइने में चेहरा।

वे बच्चों में इन दुर्गुणों को पाएँगे, इससे कष्ट भी अनुभव करेंगे; परन्तु बालकों में वे आए कहाँ से, कैसे आ गए, इसका उन्हें ज्ञान नहीं हो पाता। क्योंकि लोग प्रायः अपनी भूलों और अपने दुर्गुणों से बिलकुल आँखें मूँदे रहते हैं, इसलिए बच्चों में जब ऐसी बातें देखते हैं तो बार-बार दुखी और चिन्तित होते हैं।

परन्तु बच्चों की दृष्टि बड़ी तीव्र होती है। जब उन पर किसी ऐसी बात के लिए डाँट-फटकार पड़ती है जिसे वे स्वयं माँ-बाप को प्रायः करते देखा करते हैं, तो वे अनुभव करते हैं कि उनके साथ घोर अन्याय किया जा रहा है। भले ही हम डींग हाँकें कि बच्चों के सामने हम सदा अपनी अच्छी मिसाल पेश करते हैं, और मन में भले ही समझते रहें कि बच्चे हमारी उन्हीं बातों का

और उसी रीति से अनुकरण करेंगे जैसा कि हम चाहते हैं, परन्तु जब हम असावधान होते हैं तो कुछ ऐसी बातें कर डालते हैं, अथवा जल्दी में ऐसी बातें कह जाते हैं जिनके विषय में हम तो समझते हैं कि बच्चों ने उन्हें नहीं निहारा अथवा नहीं सुना, परन्तु हम भूल जाते हैं कि उस समय भी बच्चों के अनुकरण के लिए अपनी मिसाल पेश कर रहे हैं। हमें हैरान न हो जाना चाहिए, जब बच्चे हमारी इन बातों की भी नकल करने लग जाते हैं।

बालक माँ-बाप दोनों में, अथवा घर में जिस किसी को भी ज्यादा प्यार करता है, अथवा घर में जिस किसी की ज्यादा चलती है उसी का हमेशा ज्यादा अनुकरण करता है, जिससे घर में उसे भी उसी प्रकार की प्रधानता मिल जाय। कई बार छोटे बच्चों में बड़ों के-से व्यवहार और चेष्टाएँ देख-देखकर हम हँसा करते हैं, परन्तु विचार करने के बाद पता लगता है कि ये केवल किसी ऐसे प्रौढ़ व्यक्ति का अनुकरण-मात्र है जिस व्यक्ति को बालक बहुत अधिक प्यार करता है। शायद यही अनुकरण बालक के भावी जीवन में उसकी चेष्टाओं, व्यवहार और स्वभाव का कीमती अंग बनने वाला है। जब हम ऐसा भली भाँति समझ जायँगे तो अपने व्यवहार और चेष्टाओं में अत्यधिक सावधान और संयत रहने लगेंगे। जब हम बच्चे के ऐसे व्यवहार पर हँसते हैं तो सम्भव है कि हमारी हँसी का उस पर यह प्रभाव हो कि वह उस व्यवहार पर लज्जित होकर अधिक बचपन का अभिनय करने लगे और

बड़ों के सामने आवश्यकता से अधिक लड़कपन दिखलाए। इस प्रकार वह अपनी स्वाभाविक उन्नति के मार्ग के विरुद्ध पीछे की ओर लौट पड़ता है—इसे बचपन की ओर प्रतिगमन ( रिग्रेशन ) कहते हैं। यह लड़कपन बहुत देर तक बना रहता है और अभिभावकों के लिए चिन्ता का एक कारण बन जाता है।

## नये शिशु का आगमन

हम पहले कह आए हैं कि बालक दूसरों का अनुकरण करते हैं—अपने से बड़ों का और छोटों का भी। घर में जो प्रधान हो, अथवा जिसकी ज्यादा चलती हो वे प्राय: उसी का अनुकरण किया करते हैं।

एक पाँच साल का बालक हमें अनायास चौंका देता है, जब हम देखते हैं कि वह अब फिर कई ऐसी बातें करने लग गया है और उसे कुछ ऐसी आदतें पड़ती जा रही हैं, जिन्हें वह कई वर्ष पहले त्याग चुका था। वह फिर से सोते वक्त बिस्तर पर पेशाब कर देता है, अस्पष्ट अथवा बच्चों की-सी तोतली ज़बान में बातें करने लगा है, अधिक काल्पनिक बातें करता है, जब तक उसके पास कोई न हो वह सो नहीं सकता, और इसी प्रकार से वह माँ-बाप को तंग करने लगा है। इस नई समस्या का क्या हल है?

यदि हम घर में पूछताछ करेंगे तो हमें पता लगेगा कि इन दिनों घर में एक परिवर्तन आया है—घर में एक नये शिशु का जन्म हुआ है। बड़े बालक को इसके लिए पहले से ही तैयार किया गया था। वह अपने नवजात छोटे भाई अथवा बहन

का स्वागत करने के लिए उत्सुक भी था, और जब वह आया तो उसे खुशी भी बहुत हुई। परन्तु फिर भी कुछ समय पीछे उपर्युक्त लक्षण उसमें प्रकट हो गए। यदि हम यह कहें कि नया शिशु ही इन लक्षणों के प्रकट होने का कारण है तो माँ सिर हिलाकर कहेगी, 'वह इस बात को कभी नहीं मान सकती। बालक छोटे शिशु को बड़ा प्यार करता है, और वह कभी उसके प्रति ईर्ष्यालु नहीं हो सकता।'

ठीक है, बालक ईर्ष्यालु भले ही न हो, परन्तु वह निराश हो सकता है; क्योंकि इस नई घटना का प्रभाव तो उस पर पड़ा ही है। वह इसलिए निराश है, क्योंकि उसने समझा था कि नया शिशु खेल में उसका साथी बनेगा—और शायद यह बात उसके माँ-बाप ही उससे कहा करते थे ताकि वह नये शिशु का स्वागत करने के लिए तैयार हो जाय।

परन्तु यह नन्हा-सा प्राणी, जो सारा दिन सोया पड़ा रहता है और हर वक्त रोता है, जब जागता है तो दूध पीता है, इसका खेल का साथी कैसे बन सकता है? शायद कई सालों तक वह उसका साथी नहीं बन सकेगा। उसने यह भी आशा की थी कि शिशु की देखभाल करने में उसकी भी सहायता ली जायगी। परन्तु इस विषय में माँ-बाप उस पर ज़रा भी विश्वास नहीं करते, क्योंकि उन्हें भय है कि अज्ञानवश वह शिशु को कोई हानि न पहुँचा दे। वह केवल शिशु को देख सकता है और यह देख सकता है कि उसकी माँ अब नये शिशु को ही अपना सारा प्यार

दे रही है, उसी के पालन-पोषण में उसकी सब शक्ति ख़र्च हो रही है और उसकी चिन्ताओं का वही अब एक-मात्र केन्द्र है।

शिशु माँ की गोद में इतने आराम के साथ रहता है। माँ जब इसे दूध पिलाती है तो कितनी खुश नजर आती है, हालाँकि वह माँ की इतनी चिन्ता और प्रयास का कारण बना हुआ है। शिशु ऊपर पेशाब भी कर देता है। उसे जब लिटाया जाता है तो वह रोता है। यदि तत्काल उसकी माँग पूरी नहीं की गई तो वह गुस्सा करता है, गुस्से से उसका मुँह लाल हो जाता है और वह ज़ोर से मुट्ठियाँ बन्द करके हाथ पकड़ता है। अब घर में शिशु ही सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति है, जिसकी इच्छाएँ सबसे पहले पूरी की जाती हैं। जब तक वह बिस्तर पर आराम से पड़-कर सो न जाय, सारा घर इन्तज़ार में रहता है।

बिना जाने-बूझे ही हमारा बालक इस शिशु का अनुकरण करने लग जाता है। कारण यह है कि यदि वह वही कुछ करने लग जाय जो शिशु करता है, अथवा जो कुछ वह स्वयं कुछ वर्ष पहले किया करता था, तो वह भी घर में उतना ही माना जायगा और माँ की परवाह और लाड-प्यार का भी उतना ही हिस्सा उसे फिर मिल जायगा। बस, इसी प्रकार बालक फिर शैशव की ओर लौट पड़ता है। वह अपने खोए हुए महत्त्व को प्राप्त करना चाहता है। वैसे तो वह स्वयं नहीं जानता कि वह ऐसा सब क्यों कर रहा है, इसलिए उसे यह बतलाने का कोई फ़ायदा नहीं कि वह शिशु के अनुकरण में यह सब कर रहा है। यदि हम उसे ऐसा

बतलाएँ भी तो वह इस पर यकीन न करेगा और न इस बात को समझ ही पाएगा।

इसलिए अब किया क्या जाय? घर में हम भली भाँति शान्ति और व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं। परन्तु यह कार्य बालक को बुरा-भला कहने, डाँटने-डपटने और सजा देने से कभी सिद्ध नहीं हो सकता। न उसे बहुत ज्यादा लाडला बनाने और लालच देकर काम कराने से सिद्ध होगा। न शिशु की तरफ़ संकेत करके ऐसा कहने से होगा कि 'देखो, यह शिशु तुमसे कितना छोटा है और फिर भी कितना कम तङ्ग करता है।' हमें तो कठिनाई की तह तक जाना चाहिए। जो वस्तु इस बालक से छीनकर शिशु को दे दी गई है उसे उसके बदले में कुछ मिलना चाहिए था। इसके साथ अब, जबकि शिशु के साथ एकीकरण करके बालक उसी का अनुकरण कर रहा है, उसे और कहीं एकीकरण का अवसर देना चाहिए, जो उसकी अवस्थानुसार उसके लिए अनुकरणीय हो सके।

## बड़े बच्चे की क्षतिपूर्ति

बालक की माँ को कुछ समय बालक के साथ अकेले रहने के लिए निकालना चाहिए। इस समय में माँ या तो बालक के साथ खेले, अथवा उसे कुछ पढ़कर सुनाए। कुछ कहानियाँ सुनाए और कोई ऐसा शौक उसमें पैदा कर दे जिसमें बालक की ज्यादा दिलचस्पी हो जाय। इसे माँ और बालक दोनों कुछ समय मिलकर करें। माँ उसे समझा दे कि ये काम बड़े बच्चों के ही योग्य

हैं। घर में उसे कुछ प्रधानता भी दे दी जाय, यह भी उपयोगी है कि उसे शिशु के सम्बन्ध में कुछ कार्य करने दिया जाय जिससे उसकी देखभाल में वह माँ की सहायता करे। परन्तु यह उसकी अवस्था और सामर्थ्य पर निर्भर है।

बालक को यह भी सुगमता से समझाया जा सकता है कि शिशु से बड़ा होने के कारण वह कई ऐसे काम कर सकता है जिन्हें शिशु अभी नहीं कर सकता। वह शिशु से ज्यादा होशियार और समझदार है।

परन्तु असली समस्या की ठीक-ठीक सीधी व्याख्या उसके सम्मुख करना उचित नहीं। दृष्टान्त के तौर पर उससे ऐसा कहना अत्यन्त अनुचित है कि 'वह शिशु से बड़ा है और शिशु की भाँति उसका अभिनय करना अत्यन्त अनुचित और लज्जास्पद है। उसक शिशु की तरह बिस्तर पर पेशाब करना, रोना, चिल्लाना और गुस्से में आपे से बाहर हो जाना बहुत ही उपहासास्पद है।' इस भाँति कहने का परिणाम यह होगा कि जो बात हम पैदा करना चाहते हैं वह सर्वथा नष्ट हो जायगी। हमारा उद्देश्य तो यह होना चाहिए कि हम बालक में उत्तरोत्तर उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करें जो कि बड़े होने के कारण उसमें उत्पन्न होती ही जानी चाहिए। यह भाव ज्यों ही उसमें पैदा हो जायगा वह सुधर जायगा।

वह जब कोई काम करे तो हम उसकी तारीफ करें और उसकी सहायता करें—यह ऐसे तरीके से कि वह यह समझ ले कि

बड़े होने पर बच्चों की इतनी परवाह करना जरूरी नहीं होता जितनी शिशुओं की। 'बड़ा बालक बड़ा होशियार है और वह बाप की तरह स्वयं ही सब काम ठीक से कर सकता है।' परन्तु ये बातें समझाने में भी हमें बहुत होशियारी से काम लेना चाहिए। इसमें व्यर्थ अत्युक्ति से भी काम न लेना चाहिए। कहीं ऐसा भी न हो कि बड़े बच्चे में तो हम बड़प्पन का भाव भरते जायँ, और उसके मुकाबले में निरन्तर बढ़ता हुआ शिशु अपने-आपको बहुत छोटा खयाल करता जाय। बड़ा बच्चा बड़प्पन के घमण्ड में शिशु को बिलकुल निकृष्ट और तुच्छ ही समझने लग जाय—खासकर जब शिशु एक लड़की हो।

प्रायः देखा जाता है कि छोटा लड़का जब पाँच या छः वर्षों का होकर स्कूल जाने लगता है, तो वह कुछ समय के लिए छोटी बहन को बहुत तुच्छ समझने लगता है और उसे हिकारत की नजर से देखता है, उसके साथ ज्यादा देर तक खेलना भी पसन्द नहीं करता।

## हमजोलियों के उदाहरण

एक और अत्यन्त रोचक प्रकार का एकीकरण है जो उस समय प्रकट होता है जब बच्चे स्कूल जाने लायक हो जाते हैं। घर से कुछ घण्टे ही उन्हें बाहर रहना पड़े, यह एकीकरण और अनुकरण आरम्भ हो जाता है। बालक अपने समवयस्क बालकों की नकल करने लगते हैं। अपने से जरा बड़े बच्चों का अनुकरण करते हैं। इस प्रकार नये आदर्श और नये पैमाने उनके सामने उपस्थित

रहने लगते हैं।

यदि बालकों की उन्नति स्वाभाविक दिशा में हो रही हो तो अब वे अपने समलिंग बालकों अथवा बालिकाओं के संग खेलना चाहेंगे। भले ही इससे पहले घर में लड़के-लड़कियाँ साथ-साथ खेलते रहे हों, परन्तु अब लड़के शिकायत करने लगेंगे कि 'लड़कियाँ बेवकूफ़, मूर्ख और नादान हैं।' और इसके जवाब में लड़कियाँ शिकायत करेंगी कि 'लड़के बड़े उजड्ड और बेवकूफ़ हैं।' यह बात विवादास्पद है कि इस परस्पर विरोध के पीछे अपने से अतिरिक्त लिंग वाले व्यक्ति के प्रति स्पर्धा का भाव कहाँ तक काम करता है। अब लड़के अपने अध्यापकों को बहुत ही अद्‌भुत और अनूठा व्यक्ति खयाल करने लगते हैं और लड़कियाँ अपनी अध्यापिकाओं की ओर झुक पड़ती हैं।

कुछ समय के लिए घर तथा माँ-बाप को तो भूल-से ही जाते हैं। अब व्यवहार की कसौटी है—'जो कुछ हम स्कूल में करते हैं।' बालक हमें प्रायः अन्य बालक-बालिकाओं के साथ हुई घटनाओं के हाल आ सुनाते हैं। इनमें ज्यादा खेलों में उनके और उनके साथियों के कारनामों की बातें होती हैं। इन खेलों में ही तो बालक अपनी सामर्थ्य का प्रदर्शन करते हैं। ऐसा कम ही देखा गया है कि वे गणित-शास्त्र अथवा इतिहास आदि विषयों में किसी के विशेष ज्ञान अथवा योग्यता-प्रदर्शन की प्रशंसा करें।

अब बच्चे नये ही किस्म के कपड़ों की माँग करने लगते हैं और अपने माँ-बाप को यह यकीन दिलाने की कोशिश करते हैं

कि दूसरे बच्चे सरदी में भी सिर पर टोपी नहीं रखते और ओवरकोट नहीं ओढ़ते। हमारी लड़कियाँ अब अपने बाल विशेष रीति से बनवाना और नये-नये प्रकार से उनमें घूंघर निकलवाना पसन्द करती हैं। बालक-बालिकाएँ नये फ़ैशन और नई रुचि के अनुसार बनाव-सिंगार के नये-नये अनूठे ढंग सीखते हैं। नये प्रकार के रंगों की गहरी हलकी छाया वाले वस्त्रों के नमूने कुछ बड़ी लड़कियों (अथवा किसी युवा और रूपवती अध्यापिका) की नकल में पहनने की रुचि लड़कियों में बड़ी प्रबल होती जाती है। प्रायः ये बड़ी लड़कियाँ (अथवा अध्यापिकाएँ) वे होती हैं जिनकी स्कूल में आम तौर पर सब लड़कियाँ तारीफ़ करती हैं।

इससे यह परिणाम निकला कि हमारे अध्यापक अथवा अध्यापिकाएँ ऐसे होने चाहिएँ जिनका अनुकरण, हमारी अभिलाषा हो कि, हमारे बच्चे करें। जो कोई बच्चों की कल्पना को आकर्षित कर ले, बच्चे उसी को अपने लिए नमूना चुन लेते हैं। बच्चे प्रायः उन व्यक्तियों की ओर आकर्षित होते हैं जिन्हें उन्होंने पहले कभी देखा नहीं होता, अथवा जो उनसे भिन्न प्रकार के होते हैं जिन्हें पहले देखा होता है। ये व्यक्ति शायद वे न हों जिन्हें हम बच्चों के लिए नमूने के तौर पर पसन्द करते, यदि चुनाव बिलकुल हमारे हाथ में ही होता।

स्कूल में बच्चे जिन्हें अपना 'नायक' चुनते हैं, अथवा लड़कियाँ जिन्हें 'नायिका' चुन लेती हैं उनका चुनाव भी उपर्युक्त मनोवृत्ति के अनुसार ही होता है। बालक निरालेपन को पसन्द

करते हैं और उसकी ओर आकर्षित होते हैं। श्रेणी में शरारती बच्चे, नन्हे विद्रोही, जो स्कूल के भीतर और बाहर कोई-न-कोई साहसपूर्ण कृत्य किया करते हैं, जो हमेशा कोई-न-कोई ऊधम और उत्पात मचाते रहते हैं, कभी मुसीबत में फँसते और कभी उससे निकलते हैं—प्रायः ऐसे लड़के अपने स्कूल के साथियों में अधिक पसन्द किये जाते हैं। यह शायद इसलिए कि ये बच्चे हिम्मती और साहसी होते हैं, जिनका बाकी बच्चे अनुकरण तो करना चाहते हैं, परन्तु उतना साहस नहीं कर सकते।

इसलिए बाकी बच्चे इन साहसी बालकों की भरपूर प्रशंसा करके ही सन्तोष कर लेते हैं और उनकी विजयों और सफलताओं में स्वप्नों और दिवास्वप्नों के ज़रिये भाग लेते हुए उनके साथ मानसिक एकीकरण कर लेते हैं। इस सम्बन्ध में हम अगले किसी अध्याय में विशेष चर्चा करेंगे।

इस आयु के बच्चे अपनी श्रेणी के सहपाठियों और अपने हमजोलियों को खुश रखने का जितना प्रयत्न करते हैं और उसे अपना फ़र्ज़ समझते हैं उतना अपने माँ-बाप अथवा शिक्षकों को प्रसन्न रखना आवश्यक नहीं समझते, यद्यपि यह प्रवृत्ति उनके कई प्रकार के कष्टों का कारण बन जाती है।

## लड़कियाँ लड़का बनने को उत्सुक

पाँच से दस साल के बच्चों में एक और भी प्रवृत्ति पाई जाती है। छोटी लड़कियाँ अपने भाई, किसी दूसरे लड़के अथवा बाप की नकल करना पसन्द करती हैं। वे लड़कों के खेल और किताबें

भी पसन्द करती हैं और जब मज़ाक में उन्हें कोई लड़का कह-कर पुकारे तो खुशी अनुभव करती हैं। छुट्टियों के दिनों के लिए लड़की की माँ जब उसे लड़कों की तरह की पतलून और पाय-जामा सिला दे तो वह बहुत ही खुशी होती है और वही पहनने के लिए ज़िद करती है। वह लड़कों के ही अख़बार पढ़ना चाहती है और फिल्मों में भी अपने समवय लड़कों के कारनामों में बहुत रुचि प्रकट करती है।

लड़कों में भी कभी-कभी ऐसे लक्षण पाए जाते हैं—जब वे अपनी बहन या दूसरी लड़कियों का अनुकरण करना चाहते हैं। परन्तु स्कूल जाते ही यह इच्छा दूर हो जाती है। इसके बाद स्पष्टतया लड़कियों के प्रति निरादर और घृणा का भाव आ जाता है।

जो बालक दूसरे लिंग के बालकों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति प्रकट करते हैं, प्रायः वे होते हैं जिनके जन्म के समय उनके माँ-बाप निराश हुए थे। इस निराशा को भुलाने के लिए बहुत दिनों तक उनके माँ-बाप उन्हें ऐसे नामों से पुकारते रहे जो लड़के-लड़कियाँ दोनों पर लागू हो जाते हैं; उन्हें ऐसे वस्त्र पहनाते रहे जिनमें उनके लड़का अथवा लड़की होने की पहचान करना कठिन हो जाता था।

यह बहुत बड़ी भूल है और भविष्य में कई प्रकार की मनो-वैज्ञानिक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देती है। इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ से ही सावधानी से उपाय करना चाहिए।

बच्चों को हमें ऐसी दिशा में प्रेरित करना चाहिए कि उनका एकीकरण उनके अपने लिंग वाले व्यक्तियों के साथ ही रहे। परन्तु जब वे दूसरे लिङ्ग के व्यक्तियों का-सा आचरण करें तो हमें उनका उपहास भी न करना चाहिए। हमें इस अवसर की प्रतीक्षा में रहना चाहिए जब हम उनके सम्मुख उन्हीं के लिङ्ग वाले व्यक्तियों के अधिक आकर्षक उदाहरण पेश कर सकें और उनका सम्बन्ध उन व्यक्तियों के साथ जोड़ सकें।

एकीकरण और अनुकरण को उचित दिशा में ले जाने के लिए कहानियों, पुस्तकों और जीवन-वृत्तान्तों की भी सहायता ली जा सकती है। परन्तु यहाँ भी अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता होती है। बालक सम्भवतः कहानियों में वर्णित किसी व्यक्ति के साथ जीवन-भर का एकीकरण सम्बन्ध स्थापित कर लेगा, चाहे वह मानसिक सम्बन्ध उसके लिए भविष्य में लाभप्रद हो अथवा अत्यन्त हानिकारक।

: ४ :

# यह दानव-ईर्ष्या

बच्चे के स्वभाव में अभी-अभी जो कुछ नये परिवर्तन देखने में आए हैं, उनका ज़िक्र करते समय प्रायः माँ-बाप कह दिया करते हैं, 'हमें पक्का विश्वास है कि यह सब ईर्ष्या के कारण नहीं है, क्योंकि बालक छोटी बहन को तो हद से अधिक प्यार करता है।'

परन्तु यह कोई ठीक कसौटी नहीं है। हम किसी व्यक्ति के अनन्य भक्त और उसके प्रति अनुरक्त होते हुए भी उसके गुणों पर ईर्ष्या कर सकते हैं। बालक अपनी स्पर्धा को प्रकट करने के लिए कई तरीके इस्तेमाल करता है। बालक की मानसिक दशा में कई प्रकार की उथल-पुथल तो घर में नये शिशु के जन्म के साथ ही दृष्टिगोचर होने लगती है। घर में एक नया व्यक्ति माँ-बाप का प्रेम-भाजन बनकर आया है। अब तक घर में कई वर्षों से इस बालक की मर्ज़ी चलती थी, घर में उसकी प्रधानता थी। बालक पाँच वर्ष का हो अथवा सात वर्ष का भी हो, वह घर में अपनी प्रधानता छोड़ना नहीं चाहता। यह उसे बहुत बड़ा त्याग प्रतीत होता है।

नये शिशु के जन्म की घटना के प्रति माँ-बाप के क्या भाव

हैं यह भी हमें भूलना न चाहिए। यदि पहले और दूसरे बच्चे के जन्म में कई वर्षों का अन्तर है, तो सम्भव है कि उन्हें यह अन्तर अत्यन्त असह्य प्रतीत होता रहा हो। इसलिए जब आखिर में दूसरे बालक ने जन्म लिया है तो वे विशेष आह्लाद के साथ उसका स्वागत करते हैं। वे फूले नहीं समाते। यह सब बड़े बालक की दृष्टि से छिपा नहीं रह सकता।

यदि पहली सन्तान लड़की है और माँ-बाप को यह खयाल हो चला था कि उनके लड़का कोई होगा ही नहीं, तो आप कल्पना कर सकते हैं कि लड़के के उत्पन्न होने की असाधारण खुशी को लड़की किस कष्ट के साथ देखेगी। माँ-बाप लड़की की अपेक्षा लड़के की क्यों ज्यादा इच्छा करते हैं? वह यह भी भाँप लेती है कि लड़के में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो उसके अन्दर नहीं हैं। वह समझने लगती है कि इन्हीं विशेषताओं के कारण माँ-बाप लड़के को ज्यादा चाहा करते हैं। इसलिए न केवल वह अपने भाई के प्रति ईर्ष्यालु हो जाती है, बल्कि उसके भाई में जो स्वाभाविक भिन्नताएँ और विशेषताएँ हैं उनके लिए भी वह स्पर्धा करने लगती है।

## जब माँ-बाप कष्ट बढ़ा लेते हैं

माँ-बाप अपनी मूर्खतावश अपने कष्ट बहुत ही बढ़ा लेते हैं जब लड़की की उद्विग्नता से खीझकर वे इस प्रकार की बातें उसे कह सुनाते हैं—'यह तो शिशु से ईर्ष्या करती है। नये बालक का जन्म इसे भला प्रतीत नहीं हुआ। घर में इसका दरजा पीछे

हो गया है, यह इसे असह्य हो रहा है, इत्यादि।' जब घर में कोई अभ्यागत आता है तो माँ-वाप लड़की की ओर इशारा करके प्रायः उसे भी यही बतलाने लगते हैं—'यह कितनी ईर्ष्या से भरी हुई लड़की है।' ये सब बातें व्यर्थ का कष्ट बढ़ाने वाली हैं।

बच्चे की आदत बदलने का यह बहुत बुरा और गड़बड़ पैदा करने वाला तरीका है। सम्भव है इससे लज्जित होकर तथा स्वाभाविक संकोच अथवा भयवश वह अपनी ईर्ष्या को कुछ समय के लिए दबा रखे। यह भी सम्भव है कि वह उसे बिलकुल प्रकट ही न होने दे, परन्तु छिपी हुई ईर्ष्या अपने छिपने की जगह से भयंकर उत्पात पैदा करती है।

एक परिणाम यह हो सकता है कि इस प्रकार अपनी बुराई सुनकर बालिका शिशु से नफ़रत करने लग जाय—शायद माँ के साथ भी उसे नफ़रत हो जाय—क्योंकि उन्हीं के कारण अभ्यागतों के सामने उसकी बुराई की गई है और उसका मज़ाक उड़ाया गया है। यदि पहले बालिका शिशु के प्रति स्पर्धालु नहीं थी, केवल दुखी और निराश थी, तो अब वह मज़ाक के कारण खीझकर स्पर्धालु बन जायगी।

बालिका के दिल में बार-बार इस प्रकार के विचार उठेंगे कि उसके माँ-बाप उससे सन्तुष्ट नहीं थे। शिशु के जन्म से भी पहले उसे उन्होंने प्यार करना छोड़ दिया था। वह शायद यह भी सोचे कि लड़के के लिए उनके दिल में लालसा ही इसीलिए उत्पन्न हुई क्योंकि वह लड़की से सन्तुष्ट नहीं थे। ऐसी मनोवृत्ति बन जाने के

बाद वह अवसर की तलाश में रहेगी । सम्भव है उसकी बाल-डाह उसे किसी वक्त शिशु को थोड़ा-बहुत नुकसान पहुँचाने के लिए भी विवश कर दे। दृष्टान्त के तौर पर वह उसके उन खिलौनों को तोड़-फोड़ डाले या गुम कर दे जो अभ्यागत शिशु को प्यार से दे गए थे। बिना जाने-बूझे कि वह ऐसा क्यों करती है, वह जब शिशु के पालने के पास से गुजरेगी तो उसे हिलाकर अथवा ठोकर लगाकर जायगी, और ऐसी तरह, जिससे शिशु की नींद अनायास उचट जाय।

ईर्ष्या-रोग से प्रभावित बालक के और कौन-कौनसे लक्षण हैं? कुछ लक्षण तो ऐसे हैं जो शिशु के जन्म के तत्काल बाद उत्पन्न हो जाते हैं, कुछ ऐसे हैं जो तब तक प्रकट नहीं होते जब तक कि दोनों ज़रा बड़े न हो जायँ। खासकर, यदि उस समय भी माँ-बाप छोटे बालक को ही ज्यादा पूछें-ताछें, अथवा छोटे बच्चे को बड़े बच्चे के बराबर का दर्जा दे दें, तो बड़ा बच्चा स्वभावतः यह सोचने पर विवश होता है कि बड़ा होने के कारण उसे जो दर्जा मिलना चाहिए था वह दूसरे बच्चे को दिया जा रहा है और उसे उसके अधिकार से वंचित किया जा रहा है।

छुटपन में छोटी-से-छोटी बात का भी ज्यादा महत्त्व होता है। शिशु के सो जाने के कुछ देर बाद सुलाना, कभी-कभी वयस्क व्यक्तियों की सभाओं और क्लबों में, जलसों और उत्सवों में ले जाना, शिशु से भिन्न प्रकार के ज़रा अच्छे खिलौने, जो बड़े लड़कों के योग्य हों, लेकर देना—ये सब बड़े बच्चे को विश्वास

कराने के साधन हैं कि वह घर में अब कुछ बड़ा है और बड़-प्पन का दर्जा उसे दिया जा रहा है। छोटे बालकों की अपेक्षा विशेषता पाकर बड़ा बच्चा बहुत सन्तुष्ट होता है।

यदि इस प्रकार की कोई विशेषता भी न की जाय तो बड़ा बच्चा इसे अपने साथ एक अन्याय समझता है। उसे एक ही तो सान्त्वना थी कि वह बड़े होने के कुछ विशेष अधिकारों का उप-भोग करेगा। यदि छोटे और बड़े दोनों से एक ही प्रकार का व्यवहार किया जाय तो वह अधिकार उससे छीन लिया गया। इसके विपरीत छोटे बच्चे को भी यह अप्रिय मालूम होता है। एक ही प्रकार का कार्य करने अथवा एक ही प्रकार की वस्तुओं का उपयोग करते हुए बड़े की स्वभावतः कुछ प्रधानता तो बन ही जाती है, इससे छोटा बालक बड़े से ईर्ष्या करने लगता है। इसके सम्बन्ध में आगे विस्तार से लिखेंगे।

नये शिशु के जन्म के साथ बड़े बच्चों को पेट सम्बन्धी कुछ शिकायतें होने लग जाती हैं। कुछ समय के लिए उनकी भूख मरी जाती है, हालाँकि पहले वे हर समय भूख की शिकायत किया करते थे। यह भी सम्भव है कि वे कोई चोट लगवा बैठें, कहीं से गिर पड़ें, ताकि कुछ समय वे बिस्तर पर पड़े रहें, और इस दशा में उनकी सेवा-शुश्रूषा उसी भाँति घर में हो जैसे कि शिशु की हो रही है।

यों भी बालक उस समय पहले का-सा शान्त और सन्तोषी स्वभाव छोड़कर अशान्त और चिड़चिड़ा हो जाता है, रूठा और

रोता रहता है। ज़मीन पर लोट-पोट होकर किसी कोने में जा लेटता है, जहाँ न उसकी माँ उसे देख सके और न शिशु, जो कि दोनों उस समय आपस में प्रेमपूर्वक मज़े में बैठे हुए हैं।

## नन्हीं 'माँ'

ईर्ष्या क्या वस्तु है? दो अथवा ज्यादा व्यक्तियों के बीच में तीसरे व्यक्ति के आ जाने से पहले व्यक्तियों के प्यार में बखेड़ा हो जाना ईर्ष्या का मूल है। प्रतिस्पर्धी के व्यवहार में हमें ऐसे चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं कि हमें यह मालूम होता है कि वह उस प्यार को हमसे छीनकर ले जाना चाहता है, जिसे अब तक हम अपना खयाल करते रहे हैं। यदि हमारा प्रतिस्पर्धी ऐसा व्यक्ति हो जिसे हम दिल से बहुत प्यार करते हैं तो हमारी मनोव्यथा बहुत गहरी हो जाती है। यही दशा उस बड़े बालक की होती है, जिसे एक ओर तो शिशु से हार्दिक प्यार है और दूसरी ओर उसे साफ़ दीख पड़ता है कि शिशु ने माँ के प्यार को उससे छीन लिया है, परन्तु इसके बदले में उसे कुछ भी नहीं दिया।

परन्तु क्या वस्तुतः उसे बदले में कुछ भी नहीं मिला? कई बार तो बड़ी लड़की सीधे ही बदला लेने पर उतारू हो जाती है और माँ को शिशु के प्यार से वंचित करने का प्रयत्न करने लगती है। अनजाने ही कुछ इसी प्रकार के उद्देश्य से वह शिशु का सब कार्य स्वयं ही करने लगती है, मानो वह शिशु की नन्हीं-सी 'माँ' हो।

इस प्यार तथा शिशु की सेवा-शुश्रूषा और अत्यधिक परवाह

को कोई संदेह की दृष्टि से नहीं देख सकता, और न कोई यही दोष लगा सकता है कि यह सब कुछ नन्हीं-सी बालिका के हृदय की 'घोर ईर्ष्या' का परिणाम है। इस ईर्ष्या का स्वरूप केवल यह है कि शिशु ने उससे उसकी माँ को छीन लिया है। माँ से इस बात पर उसे जलन है कि माँ के पास तो खेलने और दिल बहलाने के लिए जीता-जागता शिशु है, परन्तु लड़की को खेलने के लिए एक बेजान गुड़िया पकड़ा दी गई है। यदि शिशु लड़का है, तो वह इस बात से और भी जलती है कि शिशु में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो प्राकृतिक तौर पर बालिका में नहीं हैं। उसमें ये विशेषताएँ क्यों नहीं हैं ? इसके प्राकृतिक कारणों को न समझने के कारण वह इसका दोष भी मन-ही-मन माँ के सिर मढ़ती है। माँ इसे कम प्यार करती थी, इसलिए उसने ही इसे जन्म देते समय इन विशेषताओं से रहित रहने दिया।

ईर्ष्या के ये सब लक्षण, जो प्रारम्भ में घर के छोटे बच्चों के प्रति प्रकट होते हैं, आगे चलकर स्कूल में हमजोलियों और मित्रों के प्रति प्रकट होने लगते हैं। ये बच्चे प्रायः अपने से छोटे बच्चों के प्रति बहुत कठोरता से पेश आते हैं। परन्तु इसके विपरीत ऐसा भी होता है, जैसा कि पहले छोटी लड़की के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है, वे छोटे बालकों को अपनी ओर आकर्षित करके अपने आसपास एकत्र कर लेते हैं और उनके प्यार को जीतकर वे शिक्षकों तथा अन्य अभिभावकों को उसके प्यार से वंचित करने का प्रयत्न करते हैं, और उन्हें अपने साथ रखकर बिगाड़ देते हैं।

जो बच्चे उपर्युक्त प्रकार से माँ से शिशु के प्यार को छीन-सा लेते हैं, उनकी माताओं का क्या हाल होता है ? इसके प्रति उनकी मानसिक प्रतिक्रिया क्या होती है ? वे प्रायः प्रसन्न होती हैं। वे इसे इस बात का प्रमाण समझ लेती हैं कि बच्चों में ईर्ष्या-भाव बिलकुल नहीं है। इससे उनका बहुत सा श्रम भी बच जाता है और जिस समय वे घर में फँसी होती हैं तो शिशु को बालिका के सुपुर्द करके वे प्रायः निश्चिन्तता अनुभव करने लगती हैं।

परन्तु पीछे से जब शिशु बड़ा हो जाता है, तब जाकर माँ को मालूम होता है कि छोटा शिशु बड़े बच्चे के कितना अधिक असर में है और उसे माँ से भी अधिक मानता है। ( ऐसा लड़कियों के सम्बन्ध में अधिक हो जाता है। ) इससे माँ को एक हल्की छिपी हुई आन्तरिक पीड़ा-सी होती है।

हमने पीछे सरसरी तौर पर इशारा किया था कि छोटे बच्चे भी बड़ों से ईर्ष्या कर सकते हैं। वे प्रायः ऐसा चाहा करते हैं कि माँ-बाप छोटे-बड़े सबसे एक समान व्यवहार करें। बच्चों को प्रायः यह सवाल परेशान किये रहता है कि एक बच्चा दूसरे बच्चे से बड़ा क्यों होता है। वे समझते हैं कि किसी-न-किसी प्रकार माँ-बाप की मर्जी ही इसका कारण है।

बालक सोचता है कि अपनी गुड़ियों की उम्र निश्चित करना जिस प्रकार उसकी मर्जी पर निर्भर है, उसी तरह बच्चों की उम्र उनके माँ-बाप निश्चित किया करते हैं। माँ ही यह फैसला करती है कि कौनसा बालक बड़ा होगा और कौन छोटा। गुड़िया को

जैसे कपड़े पहनाए जायँ और उसकी जैसी शक्ल-सूरत बना दी जाय उसी के अनुसार उसकी उम्र और लिङ्ग निश्चित हो जाते हैं।

कभी-कभी छोटी लड़की गुड़ियों की उम्र उसी क्रम से निश्चित करती है, जिस क्रम से उसे गुड़ियाँ मिली होती हैं। यही विधि परिवार में बच्चों के सम्बन्ध में होती है। इससे वह सोचना शुरू करती है—'माताजी और पिताजी को कौन आकर शिशु दे जाता है ?' परन्तु इस विषय पर हम आगे चलकर किसी अध्याय में विचार करेंगे, जहाँ हम बालकों के प्रश्नों पर चर्चा करेंगे। यहाँ अभी हमें उन्हीं जटिलताओं का विवेचन करना है जिन्हें ईर्ष्या जन्म देती है।

## स्कूल में ईर्ष्या

छोटी लड़कियाँ और छोटे लड़के आम तौर पर किस प्रकार परिवार में अपने से छोटे अथवा बड़े व्यक्तियों के प्रति अपनी ईर्ष्या-वृत्ति का प्रदर्शन किया करते हैं, इसका वर्णन हमने ऊपर किया है। हम यह भी कह आए हैं कि जो ईर्ष्या पहले घर के क्षेत्र में प्रकट होती है, वही पीछे से स्कूल में सहपाठियों और स्कूल के दूसरे व्यक्तियों के प्रति भी प्रकट हो जाती है।

जो बच्चे घर में इस बात से मन-ही-मन जला करते थे कि उनके माता-पिता उनकी अपेक्षा उनके दूसरे भाई-बहनों को क्यों ज्यादा प्यार करते हैं, वे अब अपनी इस ईर्ष्या-वृत्ति को स्कूल के क्षेत्र में भी ले जाते हैं। अब उनकी जलन का कारण उनका यह विश्वास है कि उनके अध्यापक उनकी अपेक्षा दूसरे बालकों

को पसन्द करते हैं। कई बार ईर्ष्या का कारण इतना ही होता है कि उनकी श्रेणी का कोई लड़का या लड़की बच्चे के उस भाई या बहन से शक्ल-सूरत में बहुत अधिक मिलता-जुलता है जिससे घर में बच्चे को द्वेष था। वही द्वेष अब श्रेणी के उस लड़के या लड़की से हो जाता है। इधर माँ-बाप का स्थान अध्यापक ने ले लिया है।

यहाँ सरसरी तौर पर उस द्वेष का भी जिक्र कर दें, जो माँ-बाप अध्यापकों से करने लग जाते हैं। किसी अध्यापक को उनके बच्चे के साथ विशेष प्यार है—बालक जब घर आता है तो वह अध्यापक की तारीफ के पुल बाँध देता है—उसे प्यार से याद करता है तो माँ-बाप मन-ही-मन दुखी होते हैं। यदि बच्चा माँ-बाप के सामने उनकी किसी प्रकार की आलोचना करने की मूर्खता कर बैठे और अध्यापक के साथ उनकी तुलना करते हुए अध्यापक को उनसे बढ़-चढ़कर बताने का प्रयत्न करे तो यह उनके लिए असहनीय हो जाता है।

बहुत बार माँ-बाप के दिल में शिक्षकों के प्रति ईर्ष्या का भाव इतना हल्का होता है कि वे उसे भली भाँति अनुभव नहीं कर सकते। परन्तु उनके मन पर उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता रहता है और वे अकारण ही बच्चों को उन शिक्षकों के पास से उठा लेने के लिए उतावले हो जाते हैं। अनजाने उनका मन कई प्रकार के बहाने ढूँढ़ता है—स्कूल के सामने वाली सड़क बड़ी खतरनाक है, बच्चे की स्कूल में कोई उन्नति नहीं हो रही, इत्यादि।

बच्चे को आखिर दूसरे स्कूल में भेज दिया जाता है।

स्कूल में बालक घर से भिन्न प्रकार के नये आदर्श सीखकर आता है और इस कारण घर और स्कूल में परस्पर स्पर्धा आरम्भ हो जाती है। बालक स्कूल में नई-नई बातें सीखता है और जब घर में आता है तो उसका दिमाग़ उन्हीं बातों से भरा होता है। वह अपने नये उपार्जित ज्ञान को माँ-बाप पर जताने के लिए उत्सुक रहता है। शायद उस ज्ञान से माँ-बाप भी स्वयं अनभिज्ञ होते हैं। इससे उनके मन में एक प्रकार की खीझ-सी उठती है।

सम्भव है, अध्यापक बालक पर यह ज़ाहिर करने का प्रयत्न करता रहता हो कि वह उसके माता-पिता से अधिक योग्य है और क्योंकि वह उनकी अपेक्षा अधिक विद्वान् है, इसलिए उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा उनसे अधिक है। (अध्यापक की यह वृत्ति कुछ उसी प्रकार की है जैसी हम पहले छोटी लड़की की वृत्ति के सम्बन्ध में वर्णन कर आए हैं—जो शिशु के प्यार को माँ से हटाकर अपने साथ जोड़ने का प्रयत्न करती है और इसमें सफल भी हो जाती है।) बालक अपने भावी जीवन-पथ का चुनाव भी उस शिक्षक के प्रभाव के अधीन होकर करता है। शिक्षक के साथ उसका एकीकरण इस चुनाव में सहायक होता है।

आइए, अब ईर्ष्या के कुछ अन्य पहलुओं पर भी दृष्टिपात करें और देखें कि प्रारम्भ में ही जिस समय ईर्ष्या अंकुरित होती है, उसका बुद्धिमत्तापूर्वक भली भाँति उपचार न करने से कैसी-कैसी मुश्किलें पैदा हो जाती हैं।

हम पहले भी कह आए हैं कि परिवार में छोटे बच्चे भी बड़ों से द्वेष करने लगते हैं। कारण यह है कि वे मन-ही-मन इस बात से जलते हैं कि घर में बड़ों को क्यों अधिक स्वतन्त्रता, प्रधानता और अधिक अधिकार मिले हुए हैं। बड़ों में सामर्थ्य भी छोटों से अधिक है। एक छोटी-सी लड़की अपनी ही माँ के प्रति ईर्ष्यालु होकर शिशु पर सम्पूर्ण अधिकार जमा लेने का प्रयत्न करती है। यदि हम माँ-बाप के प्रति बच्चों के व्यवहार पर दृष्टिपात करें तो हमें छोटे बच्चों के दिलों में उठते हुए ईर्ष्या के भावों और डाह की पीड़ा की गहराई का ज्ञान होगा। शिशु को जब माँ नहला रही हो, अथवा दूध पिला रही हो और बाप माँ के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर ले, तो शिशु के मन में बाप के प्रति ईर्ष्या का भाव उत्पन्न होता है और उसे बाप पर गुस्सा आता है। परन्तु ऊपर हम जिस ईर्ष्या का वर्णन करते आए हैं, वह इससे भिन्न प्रकार की, अधिक गहरी और सर्वथा विशेष-विशेष व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाली है।

## बालक तथा माँ-बाप की परस्पर ईर्ष्या

इस ईर्ष्या का जन्म उपर्युक्त प्रकार से बालक की प्रारम्भिक अवस्था में ही हो जाता है। बालकों के सम्बन्ध में कई कठिनाइयाँ, जिनका कारण और उपाय अभिभावकों की समझ में नहीं आता, इसी ईर्ष्या से उत्पन्न होती हैं। अभिभावक परेशान हो जाते हैं कि करें क्या? प्राय: बालक अपनी माँ पर अधिकार जमाने के लिए अपने बाप से स्पर्धा करने लगता है। परन्तु यह

स्थिति उलट भी सकती है। बालक की यह इच्छा हो सकती है कि बाप उसे उसी प्रकार प्यार करे जैसे माँ करती है। लड़की बाप से चिढ़ जाती है, क्योंकि वह माँ का सारा समय और प्यार अपने ही अधिकार में कर लेना चाहता है।

लड़के-लड़कियाँ जब माँ-बाप को आपस में प्यार करते देखते हैं और यह देखते हैं कि वे बच्चों से पृथक्, एकान्त में, एक-दूसरे का सहवास चाहते हैं, तो वे इसे बुरा मानते हैं। यदि माँ-बाप एकान्त कमरे में इकट्ठे बैठे हों और बच्चे बाहर से आकर देखें कि किवाड़ भीतर से बन्द हैं, तो उनका सहसा जोर-जोर से रोना-चिल्लाना इस बात की सूचना देता है कि यह बात उन्हें कितनी बुरी और असह्य अनुभव हुई है कि माँ-बाप के पास हर समय बेखटके आ-जा सकने का रास्ता बन्द कर दिया गया है। इससे माँ-बाप की ओर से उन्हें एक प्रकार से यह जतलाया गया है कि 'तुम्हारी उपस्थिति इस समय अवांछित है।'

अभ्यागतों की उपस्थिति भी बहुत बार इसीलिए बच्चों को असह्य हो जाती है। वे माँ-बाप का ध्यान अपनी ही ओर आकर्षित कर लेते हैं और बालक की ओर किसी का ध्यान नहीं रहता। इसीलिए बच्चे अभ्यागतों की उपस्थिति में बार-बार माँ-बाप के पास आकर मिनमिनाते रहते हैं।

कई बार बच्चा रात में सोए-सोए चीख या चिल्ला उठता है, रात को सहसा रो पड़ता है। इस शिकायत का आधार भी बालक के मन में छिपा हुआ वह रोष है, जो प्रायः उस समय अवश्य

उत्पन्न होता है जब बालक के सो जाने के बाद माँ-बाप आपस में घुल-मिलकर बातें करते रहें, अथवा अभ्यागतों के साथ काफी रात गए तक गप्पें लड़ाते रहें। रात को उठ-उठकर पानी माँगने अथवा यों ही शिकायत करने और खीझ उठने का प्रायः कारण न जानकर माँ-बाप यह समझा करते हैं कि बालक अँधेरे में डर गया है, परन्तु वस्तुतः अधिक हालतों में इसका कारण माँ-बाप का उपर्युक्त प्रकार से देर तक बच्चे से अलग रहना ही है।

इसीलिए इस अवसर पर रात के धीमी रोशनी वाले लैम्प मदद नहीं दे सकते। माँ-बाप परेशान हो जाते हैं, पर यह नहीं समझ पाते कि इसका मूल वस्तुतः ईर्ष्या में है। यह ज्यादातर पाँच साल से ऊपर के बच्चों को आकर सताती है। स्कूल में भेजे जाने पर भी बालक ऐसा व्यवहार करते रहते हैं। स्कूल से अतिरिक्त समय में वे निरन्तर माँ-बाप का ध्यान अपनी ओर खींचे रखना चाहते हैं।

माँ-बाप के साथ स्पर्धा का एक कारण उनकी स्वाभाविक स्वतन्त्रता और उनका अधिक ज्ञान है। बालकों को उनका ज्ञान और सामर्थ्य असीम मालूम पड़ते हैं और उनके पास पदार्थों का अक्षय भण्डार भरा पड़ा दिखाई देता है।

इस प्रकार घर और स्कूल में ईर्ष्या और स्पर्धा के कारण उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों का आप क्या उपाय करेंगे? आपको शायद पहले ही ये बातें तंग कर रही हैं और आप इनका उपाय जानने के लिए उत्सुक हैं।

सबसे प्रथम हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि बालक को ईर्ष्यालु होने का अवसर ही न दिया जाय। यदि हम अपने व्यवहार में थोड़ी-सी समझदारी और सावधानी से काम लें तो ईर्ष्या और स्पर्धा के उपर्युक्त कारणों को बहुत सफलता से दूर रखा जा सकता है। इसके बाद हम यह भी समझने का प्रयत्न करें कि हम स्वयं भी ईर्ष्यालु मनोवृत्ति के व्यक्ति तो नहीं हैं? और कहीं अपने उदाहरण द्वारा हम बच्चों में भी इस वृत्ति को जन्म तो नहीं दे रहे?

ईर्ष्यालु बच्चा भली भाँति आपके काबू में आ जायगा, यदि आप उस वस्तु के अभाव की किसी प्रकार क्षति-पूर्ति कर दें, जिसके अभाव को वह महसूस कर रहा है। उस पर कुछ ज्यादा प्यार जतलाएँ, जो उसके ज़ख्मों को भरने में बहुत अधिक सहायक हो सकता है।

ये सब प्रयत्न बच्चों के पालन-पोषण और उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं, क्योंकि ईर्ष्या-वृत्ति यदि इसी प्रकार बढ़ती जाय, तो वह मनुष्य में इतना वैमनस्य और आन्तरिक कष्ट तथा पीड़ा उत्पन्न कर देती है कि जीवन दूभर हो जाता है।

: ५ :

# भय, कल्पना और खेल

ऊपर हमने बच्चे के भयभीत हो जाने के कुछ कारणों का वर्णन किया है। उदाहरण के लिए रात को नींद उचट जाने पर यदि बच्चा माँ को अपने समीप नहीं पाता तो वह अपने-आपको अकेला पाकर घबरा उठता है। इसी प्रकार भूख लगने पर खाना मिलने में विलम्ब हो जाय तब भी उसके मन में एक छिपी हुई घबराहट उत्पन्न हो जाती है। यही घबराहट बड़े होने पर जीवन-चर्या सम्बन्धी घबराहट का रूप धारण कर लेती है। आजकल अधिकांश लोग अपने जीवन-निर्वाह के सम्बन्ध में अपने-आपको प्रायः अरक्षित पाते हैं और उसके सम्बन्ध में चिन्तित और भयभीत रहते हैं। बालक में भी उक्त दशा में इस प्रकार की अरक्षा का हलका-सा भय उत्पन्न हो जाता है।

परन्तु एक बार घर से बाहर की दुनिया से परिचित हो जाने के पश्चात् उनके मुख्य-मुख्य भय कौनसे हैं? जिस किसी परिस्थिति में कोई भय का कारण कभी पहले उत्पन्न हो चुका हो, दुबारा वैसी परिस्थिति उपस्थित होने पर उस कारण की अनु-पस्थिति में भी अकारण उसी प्रकार की घबराहट उत्पन्न हो जायगी और पुरानी भय की दशा लौट आएगी।

इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि जिस बात का भय है वह सब कुछ होने वाला भी है अथवा नहीं। शिशु-अवस्था में माँ-बाप की अनुपस्थिति का जो भय उसे सताया करता था, अब भी विशेष अवसरों पर उसे आकर सताया करता है। दृष्टान्त के तौर पर, किसी मेले में माँ-बाप की नजर से जरा देर के लिए ओझल होकर बालक बुरी तरह घबरा उठता है। इसी प्रकार गर्मियों में 'पिकनिक' के लिए जाया जाय, अथवा किसी नये शहर में निवास-गृह से एक-दो गलियाँ हटकर उसे जाना पड़ जाय और वह थोड़ी देर के लिए रास्ता भूल जाय, तो उस समय उसमें इतना धैर्य भी नहीं रह जाता कि जरा साहस करके अपने निवास-स्थान तथा अपने अभिभावकों को ढूँढने का प्रयत्न भी करे। वह किसी से राह तक नहीं पूछ सकता और न किसी को चहल-पहल वाली सड़क से सुरक्षित पार करा देने के लिए कह सकता है। उस वक्त घबराहट में बालक यह समझना शुरू कर देता है कि अब उसके माँ-बाप उसे फिर नहीं मिल सकेंगे। वह यह भी सोचता है कि वे उसे वहीं अकेला छोड़कर घर चले जायँगे। वह उस समय उसी प्रकार अपने-आपको खोया हुआ महसूस करता है, जैसा शिशु-अवस्था में अपने-आपको अकेले बिस्तर पर लेटे हुए उसने महसूस किया था और चौंककर उठ गया था। अब फिर वह उसी प्रकार रोता और चिल्लाता है, इस आशा से कि उसके माँ-बाप पहले की तरह आ जायँ।

## माँ-बाप की भयानक धमकियाँ

ऐसा क्यों हो जाता है ? कई बार तो केवल इसलिए होता है कि माँ-बाप ने बालक से कभी कोई बात मनवाने के लिए अथवा उसे सीधा करने के लिए कई प्रकार की धमकियाँ दे डाली थीं। 'देखो, चलते हुए पछड़ो मत, नहीं तो गुम हो जाओगे !' अथवा 'तुम्हें जब हम बुलाएँ तभी हमारे समीप आओ।' या 'अगर तुम भले लड़कों की तरह आचरण न करोगे, तो हम तुम्हें पुलिस के सुपुर्द कर देंगे और वह तुम्हें ताले के भीतर बन्द रखेंगे।' इत्यादि।

आखिरी उदाहरण में जिस प्रकार का भय बालक के हृदय में उत्पन्न किया गया है वह बहुत ही खतरनाक है। सम्भव है कि आपके डराने से बालक शरारत से तो रुक जाय, परन्तु पुलिस का भय सारी आयु उसके दिल से न उतर सके। वह उससे व्यर्थ ही डरा करेगा। यह भाव धीरे-धीरे नफ़रत और बाद में प्रतिहिंसा में बदल जायगा। वह समझा करेगा कि पुलिस वाले उसके स्वभाविक शत्रु हैं, इसलिए वह अपनी शक्ति-भर उनके सब कानूनों को तोड़ता चला जायगा। कानून तोड़कर वह एक प्रकारसे उनकी सामर्थ्य को आज़माना चाहता है, जिनके नाम-मात्र से उसे डराने के प्रयत्न किये जाते रहे हैं।

जो माँ-बाप अथवा अभिभावक इस प्रकार की धमकियाँ देकर बच्चों को डराते हैं और इसके साथ ही उनके दिल में अपराधीपन का भाव और सज़ा का डर उत्पन्न कर देते हैं, वे बालकों की

मनोदशा को बिलकुल बिगाड़ देते हैं। सज़ा अथवा बदला चाहे प्रकृति से सम्भावित हो अथवा मनुष्य से, मानसिक स्वास्थ्य पर उस सम्भावना का बहुत बुरा असर रहता है। कई बच्चे, जो बड़े होकर हमारे लिए कई प्रकार से क्लेश और चिन्ता का कारण बन जाते हैं और ज़रा होश सँभालने पर छोटी आयु में ही धार्मिक व सामाजिक नियमों से विद्रोह करना आरम्भ कर देते हैं, वे सम्भवतः ऐसी धमकियों और निर्मूल भय-प्रदर्शन के कारण ही ऐसे बन गए होते हैं। अपराध और गुनाह की काल्पनिक सज़ाओं की सम्भावना द्वारा उन्हें भयभीत करने के प्रयत्न का परिणाम यह होता है कि उनके मन में उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है और वे अपने को ज़रा सामर्थ्यवान पाकर सज़ाओं की अवज्ञा करने के लिए उसी प्रकार के अपराध करने में सन्तोष अनुभव करते हैं।

एक कौतूहल भी उनके मन में उत्पन्न हो जाता है कि 'आओ, ज़रा देखें तो सही कि निषिद्ध दिशा में कितना आगे बढ़ जाने के बाद भगवान अथवा मनुष्य द्वारा सज़ा मिलती है और भला क्या सज़ा मिलती है ?' अधिकारियों और बड़े-बूढ़ों की नज़रों में खटकते रहने और भगवान् तथा इन्सान का कोप-भाजन बनने में ये एक प्रकार का मज़ा-सा महसूस करते हैं। इसी अवसर पर लुटेरों और डाकुओं की रोमांचकारी फ़िल्में उनकी कल्पना को उसी दिशा में अधिक उत्तेजित कर देती हैं। वे उन फ़िल्मों के नायकों और प्रधान पात्रों के साथ अपना मानसिक एकीकरण

स्थापित करके उनका अनुकरण करना आरम्भ कर देते हैं और बिलकुल उन्हीं की तरह बन जाना चाहते हैं।

कानून और व्यवस्था का पुजारी बनना और समाज में भलामानस, शिष्ट व भद्र पुरुष बनकर रहना—जैसा कि बचपन से ही सदा उन्हें सिखाया जाता रहा है—उन्हें अत्यन्त अरोचक प्रतीत होता है। यह उन्हें अत्यन्त सीधापन मालूम देता है, इस-लिए वे खूब शरारतें करने लगते हैं, ताकि अपने मित्रों से उन्हें प्रशंसा, प्रोत्साहन, साधुवाद और सम्मान मिले और बचपन के कठोर नियन्त्रण की जंजीरों से उन्हें जल्दी आजादी मिल जाय।

निरर्थक भय-प्रदर्शन की इसके विपरीत दूसरी प्रतिक्रिया यह भी हो सकती है कि बालक भीरु-प्रकृति बन जाय। ये बालक रात के ऐसे दुःस्वप्नों के बाद घण्टों जागते रहते हैं जिनका मूल केवल उनकी अपराधीपन की भावना ही है। दिन के समय किसी नियम-भंग के अपराध की याद स्वप्न में बालक को सताती है और भयावनी शक्लों वाले पुलिस के सिपाही अथवा यमदूत बालक का बुरी तरह पीछा करके उसे जेलखाने की कोठरी में बन्द कर देते हैं। बालक का छोटा-सा अपराध इतने डरावने रूप में उसके सम्मुख आ खड़ा होता है।

## अपरिचितों का भय

जो बच्चे अधिकतर घर की चारदीवारी में ही रहते हैं और बाहर नहीं निकलते, उन्हें अपरिचितों से भी एक विशेष प्रकार की झिझक होती है, एक भय अथवा संकोच-सा बना रहता है।

जिन बच्चों को हमेशा ही माँ के आँचल से चिपटे रहने की आदत पड़ जाती है, वे बाहर के लोगों से बहुत ही कम सम्पर्क बना पाते हैं। ऐसे बच्चों के लिए स्कूल जाना इतना मुसीबत का काम होता है कि हम उसका अन्दाजा नहीं लगा सकते। उन्हें मालूम है कि स्कूल में तो सब अपरिचित-ही-अपरिचित आदमी मिलेंगे।

इतना, कि स्कूल में भी अपिरिचित बच्चों के साथ खेलना, या स्कूल में इकट्ठे रहकर काम करना भी घबराहट और सन्देह पैदा करता है। स्कूल से आकर इसका इतना गहरा असर बालक के दिल पर होता है कि वह प्रायः रात-भर बिस्तर पर लेटे-लेटे घबराता रहता है—'कल क्या होगा?' बच्चे भी प्रायः अपने सहपाठियों के साथ बड़े कठोर और बेरहम बन जाते हैं। खास तौर पर उन्हें पता लग जाना चाहिए कि उनका कोई साथी बहुत ही भीरु और कायर है अथवा बहुत सीधी तबियत का है बस वे इस अवसर की तलाश में रहते हैं कि जब कोई बड़ा व्यक्ति समीप उपस्थित न हो, उस लड़के को खूब हैरान-परेशान और तंग कर दें। यहाँ तक कि कभी-कभी उसे असह्य शारीरिक तथा मानसिक कष्ट पहुँचा देते हैं।

बच्चा अकेले एकान्त में जो-जो खेल खेलता है, उन्हें देखकर हम उसके मानसिक भय और उसके मनोरथों के सम्बन्ध में बहुत-कुछ जान सकते हैं। ये खेल उसकी कल्पना और दिवास्वप्नों से सम्बन्ध रखते हैं। इनसे हमें यह भी जानने में सहा-

यता मिलती है कि वह अपने आसपास उपस्थित व्यक्तियों और वस्तुओं के सम्बन्ध में क्या कुछ सोचा करता है। साथ ही यह भी मालूम होता है कि वह कठिनाइयों से छुटकारा पाने के लिए क्या कुछ करता है। उन मनोरथों को सफल बनाने के लिए भी क्या कुछ करता है जिन्हें वह प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में पूरा नहीं कर पाता।

अकेले आप-से-आप खेलने वाले बच्चों का प्रायः आपको एक काल्पनिक साथी मिलेगा। यह काल्पनिक साथी यदि शरारती और उपद्रवी हो, तो वह खेलने वाले बच्चे को ऐसी बातें करने को कहता है और खुद भी करता है। यदि बच्चे में ज़रा भी साहस की मात्रा हो तो वह खेल-खेल में वैसा ही कर डालता है। जब घर में कोई वस्तु गुम हो जाय, ख़राब हो जाय अथवा टूट-फूट जाय और पूछा जाय, 'किसने ऐसा किया है? अमुक बालक कहाँ है?' तो बालक फौरन उस काल्पनिक साथी का नाम ले देता है।

दोनों साथी मिलकर जो कुछ करते हैं, उसकी कई अद्भुत कहानियाँ भी सुनाते हैं, जिससे कभी-कभी तो उन्हें उसकी सज़ा भी मिल जाती है।

## कल्पना-जगत् के साहसपूर्ण कार्य

इस प्रकार झूठी और काल्पनिक कहानियों के झूठ को बहुत अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए। यह सत्य है कि इन्हें सुन-सुन कर माँ-बाप और शिक्षकों के मन में बहुत प्रकार की चिन्ताएँ उत्पन्न

हो जाती हैं। परन्तु हमें इतना जान लेना चाहिए कि इन कहानियों द्वारा हमें यह अन्दाज़ा लगाने में बहुत अधिक सहायता मिलती है कि हमारे बच्चे ज़िन्दगी में क्या चाहते हैं और कौन चीज़ उन्हें नहीं मिल रही। बालक के भावी कल्याण के लिए आवश्यक है कि प्रारम्भ में ही उसका मानसिक संतुलन ठीक बिठा दिया जाय और उसके काल्पनिक मनोरथों के स्थान पर उसकी इच्छा-पूर्ति के वास्तविक साधन उपस्थित किये जायँ। ऐसा हो जाने से वह अपनी मानसिक तुष्टि के लिए कल्पना की मनघड़न्त वस्तुओं पर निर्भर न रहेगा और उन कल्पनाओं का उसके मन पर अधिकार बहुत कम हो जायगा। अपने कारनामों की कल्पित कहानियाँ सुनाने पर बच्चे की भर्त्सना और प्रताड़ना करते रहने की अपेक्षा उपर्युक्त उपाय अधिक उपयोगी, उचित और सहल है।

वस्तुतः प्रत्येक बालक अपनी मनोरथ-सृष्टि का नेता तथा नायक हुआ करता है और अद्भुत प्रकार से खतरनाक और साहस-पूर्ण कार्य करके कल्पना-जगत् में ही प्रशंसा, धन और यश प्राप्त करने का प्रयास किया करता है। इस प्रकार वह वास्तविक जगत् की रोमांचकारी, शून्य, रूखी और नीरस ज़िन्दगी की कमियों को पूरा किया करता है। यदि घर अथवा स्कूल में सब कुछ ठीक-ठाक न हो तो मनोरथ-सृष्टि की कल्पनाएँ बहुत अधिक होंगी, क्योंकि दिन-भर के काम और खेल में उसे जो अपर्याप्त आनन्द मिला है, उसकी क्षति-पूर्ति वह कल्पना से करना चाहता है।

जो बच्चे घर में प्रसन्न नहीं रहते, वे प्रायः ऐसी काल्पनिक

कहानियाँ घड़ लेते हैं जिनमें वे लोग, जिनके साथ वे घर में रहते हैं, उनके सगे-सम्बन्धी तथा वास्तविक माँ-बाप नहीं हैं। वे कल्पना किया करते हैं कि उनके असली माँ-बाप सुरक्षा के लिए ही उन्हें इन लोगों के पास छोड़ गए हैं, और किसी दिन वे उन्हें लेने अवश्य आएँगे। ये काल्पनिक माँ बाप विशेष व्यक्तित्वशाली हैं, सामर्थ्यवान हैं, और उन्हें बहुत अधिक प्यार करते हैं। कई बार कल्पना इससे उलटी भी होती है जिसमें बालक किसी खानाबदोश औरत का पुत्र है और उसके वर्तमान अभिभावकों ने तरस खाकर उससे लेकर उसे पाल रखा है। इस बात का खयाल करके वह एकान्त में कई बार पड़ा-पड़ा रोया करता है।

इस प्रकार के कथानक हम कहानियों में प्रायः पढ़ा और सुना करते हैं। सम्भव है बालक के चित्त पर किसी ऐसी कहानी का प्रभाव हो, परन्तु बालक स्वयं मन से भी ऐसी कल्पना कर सकते हैं।

बालक की ऐसी कल्पनाएँ आरम्भ से कितनी ही विषादपूर्ण हों, आखिर में सुखान्त ही होती हैं। असली माँ-बाप फिर मिल जाते हैं, परन्तु इसके लिए उसे बड़ा भटकना पड़ता है, और काफी दुख झेलने पड़ते हैं। परन्तु यह मिलन इतना आनन्दपूर्ण और सुखदायक होता है कि पिछले सब कष्टों की क्षति-पूर्ति हो जाती है। कई बार वह कल्पना में अपने लिए नये माँ-बाप अथवा अभि-भावक ढूँढ़ लेता है, जो उसके अन्दर छिपी हुई असाधारण विशेष-ताओं और उसके अप्रस्फुटित अलौकिक गुणों को पहचानकर उसका

भली भाँति पोषण करते हैं; और अन्त में आज का दुखी और उपेक्षित बालक संसार का एक अत्यन्त प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित और सम्मानित व्यक्ति बन जाता है। तब उसके वर्तमान माता-पिता उसे पहचान पाते हैं और अपनी पिछली भूलों पर उन्हें पश्चात्ताप होता है।

कल्पना-सृष्टि का यह स्रष्टा, छोटा सा-बालक, बड़ा होकर प्रायः अच्छा लेखक और कलाकार भी बन सकता है, और अपने छिपे और दबे भावों की अभिव्यक्ति सुसंस्कृत रीति से एक बड़े क्षेत्र में करने लगता है। इसलिए जिन्हें हम तुच्छ शेखचिल्ली-बच्चा खयाल करके अपेक्षा-भाव दिखलाते हैं, उनके साथ हमें अधिक सावधान होकर व्यवहार करना चाहिए और उनके किस्सों और कल्पनाओं का यों ही मजाक न उड़ा देना चाहिए। इन मनोरथ-सृष्टियों और अद्भुत कल्पनाओं के सम्बन्ध में उनसे बहुत प्रश्न भी न करने चाहिएँ, खास तौर पर जब हमें ऐसा प्रतीत हो कि वे अपनी इच्छाओं और मनोरथों को छिपाकर रखने के कारण अपने-आपको अपराधी-सा खयाल करके कुछ घबरा और डर-से जायँगे।

बालक ने अपनी विविध आकांक्षाओं और मनोरथों को जिस हद तक अपराध माना हुआ होता है, उसी हद तक वे मनोरथ उसके खेलों और दिवा-स्वप्नों में अपनी तुष्टि और पूर्ति के लिए प्रकट होते रहते हैं। बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, यह प्रक्रिया यान्त्रिक रीति से बढ़ती जाती है। पाँच-छः वर्ष का बालक अपने

खेल खुले-आम बहुत मस्त होकर खेलता है और अपने को खास-खास व्यक्तियों के रूप में प्रकट करता है। उस समय वह अपने खेल में दूसरे बच्चों, यहाँ तक कि वयस्क व्यक्ति को भी भाग लेने की अनुमति देने को तैयार रहता है।

परन्तु ज़रा बड़ा हो जाने के बाद वह वयस्क व्यक्तियों को अपने खेल में शामिल नहीं करना चाहता और केवल बच्चों के साथ ही खेलना पसन्द करता है। यदि वयस्क व्यक्ति उसके समीप आ जायँ अथवा वे उसकी बातें सुनते हों, तो बालक संकोच और घबराहट-सी महसूस करते हैं और खेलते हुए झिझकते हैं। आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति का साधन होने के कारण दिवा-स्वप्नों का सम्बन्ध उसके अपने व्यक्तित्व तक ही रहस्यपूर्ण रीति से सीमित रहता है।

## दिवा-स्वप्न लेने की आदत

बालक के जीवन में खेलों की तरह ही दिवा-स्वप्नों का भी स्थान है। परन्तु खेलों में बालक दूसरे बालकों को भी हिस्सेदार बना लेता है। परन्तु दिवा-स्वप्नों को वह प्रायः अपने अन्तरंग मित्रों के साथ भी नहीं खोलता और जब बालक बिलकुल एकान्त में हो तभी वे उसके मन पर अधिकार कर लेते हैं। जो बालक प्रायः अकेले रहते हैं अथवा शारीरिक दृष्टि से इतने ताक़तवर नहीं होते कि सामूहिक खेलों में भली भाँति भाग ले सकें (भले ही ये खेल स्कूल के जीवन का कितना ही आवश्यक अंग हों, और स्कूल के नियन्त्रण की दृष्टि से उनमें भाग लेना प्रत्येक बालक के लिए आव-

श्यक हो ) वे बालक अपनी निर्बलता तथा असमर्थता से उत्पन्न मानसिक पीड़ा और असन्तोष से दिवा-स्वप्नों के ज़रिये मुक्ति हासिल करते हैं। दिवा-स्वप्नों के लिए सबसे अच्छा अवसर तो उस अमूल्य एकान्त में मिलता है जो बिस्तर पर लेटने और नींद आ जाने के मध्य में होता है।

जैसा हम पहले ही वर्णन कर आए हैं, दिवा-स्वप्नों में बड़ी लम्बी-लम्बी कहानियाँ घड़ी जाती हैं। बालक कल्पना में सब कार्य करता है, जो यदि व्यवहार में सम्भव होते तो उसके लिए बड़े आनन्ददायक होते। कई बार दुखी बालक अपने-आप पर ही तरस खाने लग जाता है और ऐसी कहानियाँ घड़ता है जिनमें अपने माँ-बाप तथा शिक्षकों को कोसता है। उसकी कल्पना-कहानी में उसके अभिभावकों को अपनी बेरहमी और तंगदिली का बदला आगे चलकर मिलता है। इस अवस्था में कई बार आत्म-हत्या तक के विचार बालक के मन में उठते हैं। और यह ज्यादा इस खयाल से कि इस दुखपूर्ण घटना से उसके अभिभावकों को जो गहरी चोट लगेगी, वह उनके लिए एक उचित सज़ा होगी। इस प्रकार उन्हें सज़ा देकर उसके दुखी हृदय को बड़ी सान्त्वना मिलती है।

दिवा-स्वप्नों में जब उसके बिलकुल आसपास रहने वाले व्यक्ति प्रकट होते हैं, तो वे उन विशेष रूपों में प्रकट होते हैं जैसी उनके सम्बन्ध में बालक के मन में धारणा बनी होती है। उन लोगों में बालक की दृष्टि में कोई अच्छा है और कोई बुरा, किसी

से उसे प्रेम है और किसी से सख्त घृणा। इसी के अनुसार कोई अत्याचारी शासक अथवा सामर्थ्यवान और प्रभावशाली राजा अथवा रानी, जादूगरनी, डाइन, परी, डाकू इत्यादि विविधि रूपों में प्रकट होते हैं। पुरानी पुराण-गाथाओं और किंवदन्तियों में जो अद्भुत प्रकार के वर्णन हम सुना करते हैं, वे सब वस्तुतः पारिवारिक सम्बन्धों और उनसे छुटकारा पाने की साहसपूर्ण कल्पनाओं के ही अनेक प्रकार के विकृत रूप हैं।

एक बहुत ही रुचिकर कल्पना बच्चे करते हैं, जिसमें वे ऐसी मनोरथ-सृष्टि की कल्पना करते हैं जहाँ वे स्वयं तो वयस्क व्यक्तियों का स्थान ले लेते हैं तथा माँ-बाप और शिक्षक आदि सबको अपने नियन्त्रण में रखते हैं।

स्कूल जाने के बहुत शीघ्र बाद वह ऐसे खेल खेलता है, जिसमें स्वयं खेल-खेल में शिक्षक बन जाता है और गुड़ियों, पालतू प्राणियों, छोटे दोस्तों अथवा किसी काबू आये हुए वयस्क व्यक्ति को अपना शागिर्द बनाकर मास्टर की तरह उन पर हुक्म चलाता है। यह छोटा-सा 'शिक्षक' ऐसा अभिनय करने में बहुत खुशी अनुभव करता है कि वह अपने 'शिष्यों' की छोटी-सी श्रेणी से अधिक ज्ञानवान है और शिष्यों से अपनी आज्ञा पालन कराने में अत्यन्त कठोरता से काम लेता है।

यदि हम बालक को इन दिवा-स्वप्नों और मनोरथ-सृष्टियों में यों ही मग्न रहने दें और बालक को इनके ज़रिये आत्माभिव्यक्ति ( सेल्फ़ एक्स्प्रेशन ) का पूरा-पूरा अवसर देते रहें, तो

आगे चलकर इनका क्या बनता है? और यदि इसके विपरीत हम मज़ाक उड़ाकर अथवा दूसरी तरह से उसके स्वप्नों को भंग कर दें, उसे लज्जित करके, निरुत्साहित करके अथवा धमकाकर स्वप्नों के मार्ग से उसकी आत्माभिव्यक्ति को सर्वथा कुचल डालें, तो क्या परिणाम होगा? हमने जैसे ऊपर कहा है, दिवा-स्वप्न और मनोरथ-सृष्टि की अवास्तविकतापूर्ण कल्पनाएँ भी वस्तुतः एक प्रकार की वास्तविकता लिये हुए हैं, अर्थात् ये इस बात के संकेत हैं कि बालक अपने वास्तविक जीवन में अनेक प्रकार की वस्तुओं से वंचित ही रहा है। परन्तु यदि हम यह संकेत ग्रहण न करके उन्हें तुच्छ समझकर दबाने का यत्न करें तो क्या होता है?

बच्चे के निजी मामलों में बिना किसी प्रकार का दख़ल दिये, उसकी कल्पनाओं की प्रवृत्ति का बहुत सावधानी से निरीक्षण करना हमारे लिए एक अत्यन्त ही उपयोगी पथ-प्रदर्शक है। इससे हम यह जान सकते हैं कि बालक की आवश्यकताएँ क्या हैं, उसकी कठिनाइयाँ क्या हैं और उसे इस सम्बन्ध में सहायता देने का उचित मार्ग कौनसा है। इसके लिए इन कल्पनाओं की रचना और उनके सम्भावित परिणामों को भली भाँति जाँच लेना आवश्यक होता है, तभी हम बालक की शिक्षा-दीक्षा और उसके मानसिक विकास के लिए उचित प्रणाली का ठीक-ठीक निश्चय कर सकते हैं। ऐसा करके हम उसकी कुछ प्रवृत्तियों को उभारेंगे, उसे कुछ दिशाओं में प्रोत्साहन देंगे और कुछ दूसरी प्रवृत्तियों को नये सिरे से उचित और सुरक्षित मार्गों में प्रेरित करेंगे—जिस

नई दिशा में उसकी समुचित रीति से वृद्धि और विकास होता रहे।

ऊपर हमने कहा है कि कुछ बालक अपनी कल्पनाओं का उपयोग अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में भी करते हैं और हम देखते हैं कि इन दिवा-स्वप्नों और बाल-कल्पनाओं में चित्रित साहस-पूर्ण कार्यों और नये-नये अन्वेषण तथा खोज सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षाओं को अपने जीवन में पूर्ण कर दिखाते हैं। वे बड़े होकर सफल लेखक, कलाकार, डॉक्टर, सफल व्यापारी अथवा कुशल शिक्षक बन जाते हैं। परन्तु यदि अपने कल्पना-जगत् में बालक सदा समाज-हित-विरोधी कार्य करते हुए एक समाज-द्रोही और अपराधी के रूप में उपस्थित होता रहा है, तो अधिक सम्भव है कि वह अपने भावी-जीवन में भी उसी प्रकार के अपराधियों—चोरों, डाकुओं और नर-हत्यारों—के दुःसाहसपूर्ण कारनामों का, जिनका वर्णन हम प्रायः समाचार-पत्रों में पढ़ा करते हैं, अनुकरण करेगा और जीवन में उसी प्रकार का बन जायगा।

परन्तु इस प्रकार अपराधियों के दुःसाहसपूर्ण कृत्यों में रोचकता दिखाने की प्रवृत्ति ऐसी दिशा में भी प्रेरित की जा सकती है कि वह बालक बड़ा होकर, अपराधियों की कहानियों और उनके सम्बन्ध में रोमांचकारी घटनाओं को अत्यन्त रोचक ढंग से लिखने वाला एक सफल लेखक बन जाय, अथवा कम-से-कम ऐसी कहानियों की पुस्तकें पढ़ने और ऐसी तसवीरें देखने का उसे खास शौक पड़ जाय।

## जब 'स्वप्न' सच्चे सिद्ध होते हैं

हम कह आए हैं कि बच्चों की कल्पना-कथाएँ हमेशा सुखान्त नहीं होतीं, न तो बाल्य-काल ही में और न बाद में, जब वे उसी प्रकार का जीवन बना लेते हैं अथवा उन्हीं कल्पनाओं को वास्तविक जगत् में दुहराने की कोशिश कर रहे होते हैं। वह बच्चा जो बीमारी या दुर्भाग्यपूर्ण जीवन आदि की कल्पना करता है अथवा उनका अभिनय करता है, उसी के साथ अपने-आपको दया का पात्र बना लेता है और इस अवस्था में अपने लिए सहानुभूति-पूर्ण सान्त्वना देने वाले व्यक्ति की भी कल्पना करता है। सम्भव है कि बाद में वह सचमुच बीमर पड़ जाय, जिससे वह किसी रहमदिल डॉक्टर अथवा नर्स की वात्सल्य और सहानुभूतिपूर्ण चिन्ता का पात्र बन सके। इसके साथ ही अच्छा हो जाने के बाद स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए काफ़ी समय घर पर अथवा किसी स्वास्थ्य-गृह में रखा जाय, जिससे बे-लुत्फ़ और कठोर परिश्रम से उसे छुटकारा मिला रहे। कल्पना का यह कोई बहुत अच्छा सुखपूर्ण अन्त नहीं कहा जा सकता।

यह भी सम्भव है कि बालक बिलकुल शेखचिल्ली बन जाय। जब उसे अनुभव हो कि कल्पनाओं और दिवा-स्वप्नों में वह पर्याप्त सन्तोष और सान्त्वना उपलब्ध करता है और उसके मन का काफी बोझ हलका हो जाता है तो फिर वह इसी पर निर्भर रहना आरम्भ कर देता है। फिर वह जीवन में अपने मनोरथों और महत्त्वाकांक्षाओं को सार्थक बनाने के लिए कोई प्रयास और प्रयत्न

नहीं करता। वह स्कूल के काम में पछड़ने लगता है। श्रेणी में उसे मूर्ख, सुस्त और पढ़ाई में कमजोर लड़कों में गिना जाने लगता है। उसके सम्बन्ध में उसके अभिभावक, शिक्षक और सहपाठी सभी यह धारणा अपने मन में बिठा लेते हैं कि उसकी बुद्धि और मानसिक शक्तियाँ इस काबिल ही नहीं कि वह अपने सम-वयस्क बालकों के साथ श्रेणी में चल सके।

यदि बालक को कल्पना-जगत् में बैठकर सान्त्वना प्राप्त करने का अभ्यास पड़ गया है, तो इससे बालक को किसी प्रकार की चिन्ता अथवा विषाद तो नहीं होता। उलटे, सम्भव है, उसे कुछ समय बाद यह वहम होने लगे कि वह बड़े-बड़े विद्वानों और प्रसिद्ध पुरुषों के महत्त्वपूर्ण कार्यों से बढ़-चढ़कर गौरवपूर्ण कार्य करके दिखा सकता है। इसके साथ ही वह मन-ही-मन शिकायत कर सकता है कि अभी ऐसा कर दिखाने के लिए उसे न समय दिया जा रहा है और न अवसर ही, परन्तु एक-न-एक दिन वह कुछ करके दिखाएगा। बचपन में वह केवल स्वप्न लेने वाला बालक बना रहता है—सम्भवतः उन सबके प्रति ईर्ष्यालु, जिनके सम्बन्ध में वह समझती है कि उन्हें अनायास ही सफलता लाभ करने के साधन उपलब्ध हो जाते हैं। वह समझता है कि दूसरों को सफलता इसीलिए मिल जाती है क्योंकि वे बड़ों के कृपा-पात्र हैं और उन्हें अधिक अच्छे अवसर मिल जाते हैं।

यदि आप अपने बालकों को भली भाँति उचित दिशा में प्रेरित करना और उनका समुचित मार्ग-प्रदर्शन करना चाहते हैं

तो ऊपर के वर्णन से आपको अवश्य इस सम्बन्ध में कुछ संकेत मिल गए होंगे। आपने यह जान लिया होगा कि बालक की मानसिक सृष्टि को भली भाँति जानना, उनके भय, मनोरथों, खेलों और दिवा-स्वप्नों का उनके मानसिक जीवन में क्या स्थान है इसे भली भाँति समझना और बालक की उन्नति की दिशा का पता रखना कितना आवश्यक है। आपने समझ लिया होगा कि उसकी अचेत अभिलाषाएँ ( अनकॉन्शस विशिस ) किस प्रकार वृद्धि पाती हैं, तथा वास्तविक जगत् में जिन वस्तुओं के लिए उनका मन तरसा करता है उनकी क्षति-पूर्ति के लिए वह अन्दर-ही-अन्दर कैसे उपायों का निरन्तर आश्रय लिया करता है।

आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र की खोजों से यह विदित है कि कुछ बीमारियों का मूल कारण बचपन में भोजन में कुछ खाद्य-पदार्थों की कमी है, अथवा कई बीमारियाँ हमारी विनाल-ग्रन्थियों ( डक्टलैस ग्लैण्ड ) के ठीक काम न करने से उत्पन्न होती हैं। अगर हम शारीरिक पदार्थों की कमी पूरी कर दें तो स्वास्थ्य सुधर जाता है।

ठीक यही बात मनोवैज्ञानिक न्यूनताओं के सम्बन्ध में भी है। वात्सल्य-सहानुभूति और प्यार, खुशी, साहस और उत्साह इत्यादि की हमारे मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत अधिक आवश्यकता है। यदि इनके भली भाँति उपलब्ध न होने के कारण बालक की मन-स्तुष्टि पूरी तरह न हो, तो वह उस कमी को दिवा-स्वप्नों और कल्पनाओं के द्वारा पूरा करने का प्रयत्न करता है, यद्यपि इनसे उसकी

वास्तविक सन्तुष्टि नहीं हो सकती।

बालकों की अभिलाषाओं, मनोरथों और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए हमें उन्हें ऐसे अवसर देने चाहिएँ जो सामाजिक नियमों की सीमा के भीतर हों और समाज के शिष्टाचार के अनुकूल हों, जिससे बच्चे प्रसन्न भी रहें और समाज के उपयोगी सदस्य के रूप में भली भाँति वृद्धि पा सकें। इससे उन्हें वास्तविक जीवन में कोई न्यूनता अथवा क्षति अनुभव ही न होगा और उसकी पूर्ति के लिए उन्हें निरन्तर कल्पना-सृष्टि की शरण न लेनी पड़ेगी।

: ६ :

# बालक के मन की कार्य-शैली

बालक की विविध प्रकार की मानसिक दशाओं, कल्पनाओं और आत्माभिव्यक्ति के अनेक मार्गों का हमने पिछले अध्याय में वर्णन किया है। बालक के मन की कार्य-शैली और उसके व्यापार सम्बन्धी चर्चा को जारी रखते हुए अब हम कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओं का वर्णन करना चाहते हैं। बालक किस प्रकार सोचता और विचारता है, इस सम्बन्ध में उसके प्रश्नों पर भी विचार करना अत्यावश्यक है। पाँच से दस वर्ष की आयु के मध्य में बालक के मन में विविध प्रकार के प्रश्न उठते हैं और वह अपने आसपास के लोगों से उनके ठीक-ठीक उत्तर जानने के लिए बहुत उत्सुक रहता है। ये प्रश्न उसकी मानसिक प्रगति को सूचित करते हैं।

अधिकांश व्यक्ति ऐसे होते हैं जो यह विश्वास ही नहीं कर सकते कि इतनी छोटी अवस्था के बालकों में भी विचार-शक्ति उत्पन्न हो सकती है। वे समझते हैं कि बालक जब तक वयस्क व्यक्तियों से समझी जाने वाली भाषा में अपने भाव प्रकट करने योग्य नहीं हो जाता, उसमें विचार करने की शक्ति ही नहीं होती। यह धारणा ग़लत है। शिशु-दशा में भी विचारधारा तो चला ही

करती है, हाँ वे विचार मानसिक चित्रों, भावोद्वेगों और मानसिक आवेशों के रूप में ही होते हैं। इन विचारों को शिशु पहले रोने, और प्रश्न-सूचक निगाहों के ज़रिए, तथा फिर बाद में शिशु-वाणी में अस्फुट रूप से बातें करके प्रकट करता है। कई बार शिशु-वाणी को छुड़ाना कठिन हो जाता है हालाँकि धीरे-धीरे वयस्क लोगों और बड़े बच्चों की वाणी को अपनाना ही होता है।

## जब शिशु पहले-पहल बोलता है

शिशु की प्रथम वाणी प्रायः माँ-बाप के लिए अत्यन्त आनन्द-वर्धक होती है। वह जो मौलिक ( रुडिमेंटरी ) ध्वनियाँ निकालता है, उनके अनुमान द्वारा हम कुछ अर्थ निकालने का प्रयत्न करते हैं—शायद उनके वह अर्थ होते नहीं। बच्चा इस बात से खुश होता है कि वह कुछ नये प्रकार की ध्वनियाँ निकालने की सामर्थ्य पा सका है। इन ध्वनियों को निकालने के लिए मुख की माँस-पेशियों को जो नये प्रकार के अभ्यास करने पड़ते हैं, उनको दुहरा-दुहराकर भी वह खूब खुश होता है। प्रतिदिन कोई नई ध्वनि निकालने का तरीका सीखता है और उसे यह विश्वास हो जाता है कि वह अन्य व्यक्तियों, पशु-पक्षियों तथा भौतिक वस्तुओं द्वारा निकाली हुई ध्वनियों की नकल करके किसी हद तक बिलकुल उन्हीं की तरह आवाज़ें निकाल सकता है। पीछे से उन ध्वनियों के साथ जोड़े हुए अर्थ भी मालूम होते जाते हैं। उसे यह भी ज्ञान हो जाता है कि इस साधन से वह अपनी इच्छाओं और अभि-लाषाओं, अपनी रुचि-अरुचि और अनेक प्रकार के भावों को

प्रकट कर सकता है, प्रश्न पूछ सकता है और उनके उत्तर प्राप्त कर सकता है।

यह सब कुछ प्रकट करता है कि शिशु की मानसिक प्रगति निरन्तर जारी है। यदि हम बालक के प्रश्नों का भली भाँति विवेचन करें तो हमें मालूम हो जाता है कि वह क्या चाहता और क्या सोचता है और कहाँ तक ध्वनि-संकेतों के साथ संयुक्त अर्थों को समझता है। जीवन के प्रथम वर्षों में प्रश्न बहुत ही सीधे-सादे होते हैं और किसी एक अभिलाषा को प्रकट करते हैं। परन्तु पाँच या छः वर्ष के अनन्तर दूसरे प्रकार के कई प्रश्न और अनेक प्रकार की समस्याएँ उसके मन पर अधिकार कर लेती हैं। अब वह अपने प्रश्नों द्वारा अपने आसपास की वस्तुओं के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, जितना कि वह अपने वैयक्तिक अनुभव द्वारा इतनी जल्दी प्राप्त नहीं कर सकता।

वह पूछता है और कोई उसे आवश्यक उत्तर भी दे देता है। धीरे-धीरे बालकों के प्रश्नों से घर के लोग तङ्ग आने लगते हैं। बालक क्या जानना चाहता है, इसे वह बहुत साफ और नपे तुले शब्दों में भली भाँति प्रकट नहीं कर सकता। इसलिए सयाने लोग उसके प्रश्न करने पर 'बेवकूफ' कहकर उसकी भर्त्सना कर देते हैं। कभी उसके प्रश्नों का उपहास करके हँसकर टाल देते हैं, कभी खीझ उठते हैं। यदि कहीं उसका प्रश्न अपने अथवा दूसरों के देह और देह के विविध अङ्गों और उनकी क्रियाओं के सम्बन्ध में

हो तो उसे 'दुष्ट' और 'गँवार' कहकर उसकी विडम्बना की जाती है।

इसका परिणाम यह होता है कि बालक का प्रश्न करने का स्वभाव कुचला जाता है। इस भय से कि उसे उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलेगा, वह प्रश्न पूछने में संकोच करने लगता है, प्रश्न पूछते हुए डरता और झिझकता है। अब वह क्या करता है? जिस प्रकार जङ्गलों में निवास करनेवाला सभ्यता की प्राथमिक अवस्था वाला मानव, प्रकृति की कल्पना-शक्ति का आश्रय लेकर उसकी अद्भुत प्रकार से व्याख्या किया करता था, उसी प्रकार बालक कल्पना द्वारा स्वयं ही अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की चेष्टा किया करता है।

अथवा जो कुछ वह जानना चाहता है, उसे जानने के लिए चुपके-चुपके घर के अन्दर और बाहर तथा ईधर-उधर सब कहीं झाँकता फिरता है। कभी अलमारियों को खोलता है, कभी मेज़ की दराजों के अन्दर टटोलता है और प्रायः माँ-बाप की वस्तुओं को उनकी अनुपस्थिति में उलट-पलटकर जाँचने के अवसर की ताक में रहता है। इससे घर में स्वभावतः बड़ा क्लेश पैदा होता है। माँ-बाप यह तो समझते नहीं कि बालक के प्रश्नों का उत्तर देकर वे इस मुसीबत का इलाज कर सकते हैं; बस, बालक को उसकी इन दुःसाहसपूर्ण अनधिकार चेष्टाओं के लिए डाँटते-डपटते और सज़ा तक दे डालते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उसकी जिज्ञासा और भी कुचली जाती है।

## जिज्ञासा-वृत्ति और स्कूल

यदि बालक की जिज्ञासा को बहुत अधिक कुचला जाता रहा हो, तो उसके मन पर इसका यह प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है कि स्कूल जाने पर वहाँ के अध्यापक उसे अपनी मर्ज़ी से जो कुछ सिखाना चाहते हैं, वह नहीं सीखना चाहता। जो कुछ जानने की इच्छा स्वाभाविक रीति से उसके मन में उठी थी, वह उसे बतलाया नहीं गया और जो कुछ उसे बतलाया जा रहा है, उसके लिए सम्भवतः उसके मन में रत्ती-भर भी स्वाभाविक जिज्ञासा मौजूद नहीं। परिणाम यह होता है कि जब उसे शिक्षक पढ़ाते हैं, तो उसका मन अपनी और ही उधेड़-बुन किया करता है, कहीं और घूमता रहता है। अब स्कूल की पढ़ाई में वह पीछे रहने लगता है, मन्द-बुद्धि और मूर्ख कहलाने लगता है। इस अवस्था में अब वह कोई प्रश्न पूछने लायक ही नहीं रहता, और कभी साहस करके पूछ भी बैठता है तो यह स्पष्ट नहीं कर सकता कि वह पूछना क्या चाहता है। अध्यापक और सहपाठी उसे नितान्त मूर्ख और निर्बुद्धि समझते हैं, परन्तु वस्तुतः उसका मन निरन्तर तीव्र गति से कार्य कर रहा होता है।

लगभग छः वर्ष की अवस्था में बालक के मन में एक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न उठा करता है, जो उसकी मानसिक शक्तियों के स्वाभाविक विकास और वृद्धि का सूचक है। प्रायः बालक इस प्रश्न को बहुत स्पष्ट नहीं कर सकता और जब पूछ बैठता है तो माँ-बाप उत्तर देने में बहुत दिक्कत अनुभव करते हैं। यह प्रश्न है, 'मैं

क्या हूँ ?' छोटे बच्चे 'मैं' और 'मुझे' शब्द बहुत कम इस्तेमाल करते हैं। वे प्राय: अपने लिए भी इसी तरह सोचा करते हैं—'यह राम है', 'यह राम को दो।" यह समझने में उन्हें जरा देर लगती है कि 'मैं' और 'मुझे' शब्द को हर कोई अपने-आप को सूचित करने के लिए इस्तेमाल करता है।

'मैं क्या हूँ ?' यह प्रश्न बालक के मन में कई बार इतने वेग से और अचानक उठता है कि वह इसे सोचकर परेशान हो जाता है। प्रायः बालकों को वह समय और स्थान बहुत समय तक याद रहता है जब और जहाँ उनके मन में यह प्रश्न उठा था।

कई बालक 'मैं' और 'अपने-आप' में भेद समझते हैं। वे समझते हैं, मानो उनका दुहरा व्यक्तित्व है और वे अपने-आपसे बातें किया करते हैं।

इसके बाद फ़ौरन ही एक नया प्रश्न भी उत्पन्न होता है, 'मैं कहाँ से आया हूँ ?' परन्तु यह प्रश्न प्रायः इस प्रश्न के बाद में आता है—'शिशु कहाँ से आ जाते हैं ?' बालक के मन में यह प्रश्न बहुत ही आरम्भ में उत्पन्न हो जाता है, परन्तु उपर्युक्त दोनों प्रश्नों को वह एक साथ जोड़ नहीं सकता।

यदि माँ-बाप ने दानिशमन्दी और धैर्य के साथ उनके इन प्रश्नों का भली भाँति उत्तर दे दिया है, तो बच्चों को यह समझने में कोई भी कठिनाई न होगी कि वे शिशु-दशा से बढ़ते-बढ़ते इतने बड़े हो गए हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे घर में नन्हा शिशु धीरे-धीरे बड़ा होता जा रहा है। परन्तु यदि बालक के प्रश्नों का

उत्तर न देकर उसे वैसे ही मिथ्या बातों से टाल दिया गया तो अपने सम्बन्ध में उसका यह प्रश्न बहुत देर तक बार-बार उठेगा और उसे हैरान करता रहेगा।

बाद में और भी प्रश्न उठते हैं, जो माँ-बाप को ज्यादा हैरान-परेशान करते हैं। 'मरने के बाद सब लोग कहाँ चले जाते हैं?' 'जीवन क्या है?' 'मौत क्या है?' ये प्रश्न किसी नाती-सम्बन्धी अथवा दोस्त की मृत्यु को देखकर अथवा ऐसा समाचार सुनकर पैदा होते हैं। मरे हुए पशुओं और पक्षियों को देखकर भी ऐसे प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। ये घटनाएँ बालक के लिए एक बिलकुल नये प्रकार का अनुभव उपस्थित करती हैं।

किसी छोटे बच्चे की मौत उसे चौंकाकर और भी अधिक इस प्रश्न का हल ढूँढ़ने के लिए उद्विग्न कर देती है। बालक यह तो मान लेते हैं कि लोग बूढ़े हो जाते हैं और फिर मर जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उसके पुराने खिलौने गिरकर टूट जाया करते हैं अथवा फेंक दिये जाते हैं। परन्तु बचपन की मौत उसके लिए नई चीज़ है। और यदि बालक मर गया तो वे भी मर सकते हैं। वे मरकर कहाँ जायँगे?

## कठिन प्रश्नों का उत्तर

बच्चों के प्रश्नों के उत्तर कैसे देने चाहिएँ? क्या हम सब प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं? क्या कुछ ऐसे प्रश्न नहीं होते हैं जिनको भविष्य के लिए छोड़ दिया जाय? क्योंकि कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका सम्बन्ध ऐसे विषयों के साथ होता है जो

बाल-बुद्धिगम्य नहीं होता। परन्तु हमें समझ लेना चाहिए कि यदि बालक के मन-बुद्धि का विकास इतना हो गया है कि वह इस प्रकार के प्रश्न निर्माण करके उन्हें पूछ सकता है तो उसे ऐसा सामान्य उत्तर देना कुछ कठिन न होना चाहिए, जो उसकी बाल-बुद्धि की पहुँच से बाहर न हो।

वयस्क लोगों में बालकों के प्रश्नों का उत्तर देने में जो अनिच्छा पाई जाती है, उसके पीछे एक ग़लत खयाल होता है कि ख़ास-ख़ास प्रकार की बातें बालकों को तब तक न बतानी चाहिएँ जब तक कि वे कुछ और बड़े न हो जायँ।

'ज्ञान शक्ति है।' 'उम्र के साथ अक्ल आती है।' इन कहावतों से हम भली भाँति परिचित हैं। हम 'अदन के बाग़ में ज्ञान-वृक्ष के फल खाने' के कथानक को भी जानते हैं कि किस प्रकार 'आदम' को उसकी सज़ा मिली थी।

ये सब बातें हमें यह समझने के लिए प्रेरित किया करती हैं कि ज्ञान एक ख़तरनाक वस्तु है, और यदि बालकों को उन सब बातों का ज्ञान हो जायगा, जिनका ज्ञान हमें है, तो वे भी हमारी बराबरी करने लगेंगे, जिसे हम सहन नहीं कर सकते। हम अपने अधिक ज्ञान के कारण प्राप्त हुई महत्त्वशीलता और प्रभुत्व को गँवाना नहीं चाहते।

माँ-बाप को ज्ञान-वृद्ध होने के कारण जो महत्त्व प्राप्त होता है, उससे बालक भली भाँति अनभिज्ञ होते हैं और बालक इसके लिए स्पर्धा भी करते हैं। वे प्रायः उस दिन की प्रतीक्षा में रहते हैं

जब माँ-बाप और शिक्षकों के समान उन्हें भी प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक विषय का ज्ञान होगा, जिससे वे भी अपने से छोटे, स्वल्प ज्ञान वाले बालकों की उपस्थिति में अपना बड़प्पन जता सकेंगे।

यह ज्ञानार्जन की अभिलाषा उन बालकों में बहुत तीव्र हो जाती है जिनके माता-पिता समझदार हैं और घर पर उनके प्रश्नों के समुचित उत्तर देते रहते हैं। जिनके माँ-बाप बालकों को हर बात में अनभिज्ञ बनाये रखते हैं, उनमें यह बात उत्पन्न नहीं हो सकती। इस प्रकार के बालक यदि निरन्तर प्रयत्न द्वारा कुछ ज्ञान उपलब्ध कर भी लेते हैं, तो उसे यत्नपूर्वक अपने पास सँभालकर रखते हैं अथवा दूसरे छोटे बच्चों को सिखाने-पढ़ाने के अवसरों की तलाश में रहते हैं, जहाँ वे अपने स्वल्प और अपूर्ण ज्ञान का थोड़ा-बहुत प्रदर्शन कर सकें। इस प्रकार के बच्चों से दूसरे बालकों के माँ-बाप को स्वभावतः परेशानी हो सकती है, क्योंकि सम्भव है कि उनके कुछ अपने विचार हों और वे कभी न चाहें कि उनके बच्चे इन बच्चों से अधकचरा-सा ज्ञान उपलब्ध करके मार्ग-भ्रष्ट हो जायँ।

एक बात और जिससे माँ-बाप बालकों के प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर देने में संकोच करते हैं यह होती है कि बालकों के प्रश्नों का सही-सही उत्तर ऐसा न हो जो आस-पास वालों की धारणाओं और रुचियों के विपरीत हो और इससे कहीं वे उनमें अप्रिय न बन जायँ। ऐसे व्यक्तियों के लिए निम्नलिखित योजना उचित रहेगी। ज्यों ही प्रश्न उत्पन्न हो, उसका सीधा सरल उत्तर

देने में ज़रा भी संकोच न करें। यदि आप तत्काल उत्तर न देकर संकोच में फँस जायँगे तो बालक के मन पर इसका यह प्रभाव पड़ेगा कि वह प्रश्न कोई असाधारण और उत्तेजनापूर्ण है। परन्तु यदि आप उस पर सामान्य स्वाभाविक रीति से बातचीत करेंगे तो बालक भी उस विषय को उसी भाव से ग्रहण करेगा।

शिशुओं के जन्म के सम्बन्ध में जितना शीघ्र बालकों को मालूम हो जाय, वे उस ज्ञान को उतना ही उत्तेजनारहित स्वाभाविक रीति से ग्रहण कर लेते हैं; क्योंकि उस आयु तक उनमें कुछ असाधारण अचम्भे की बात अथवा उत्तेजना अनुभव करने की सम्भावना नहीं होती जो बड़े होने पर हो जाती है। यही बात बालक-बालिकाओं के लिंग-भेद सम्बन्धी ज्ञान के विषय में है, यही बच्चों और बड़ों के भेद के विषय में भी। ऐसा करने से बालक इस विषयक ज्ञान को परस्पर गुप्त और रहस्यपूर्ण रीति से एक-दूसरे में वितरण करने के लिए उत्सुक न रहेंगे और इस विषयक ज्ञान को कोई अद्भुत और गोपनीय वस्तु न समझेंगे।

तथापि इतना हम बच्चों को समझा सकते हैं, और यह बात हमें बुद्धिमत्तापूर्वक बड़ी सावधानी से समझानी आनी चाहिए कि यह लिंग-भेद आदि विषय समाज में आम चर्चा करने के विषय नहीं समझे जाते और समाज के शिष्टाचार के अनुसार इनको अपने तक ही रखना होता है।

## उत्तर न देने से खतरा

जैसा ऊपर कहा गया है, यदि बालक को यह अनुभव हो जाय कि उससे कुछ छिपाया जा रहा है तो उसे झाँकते फिरने और चुपके-चुपके बातें मालूम करने की आदत पड़ जाती है। माँ-बाप और अपने से बड़ों से लुक-छिपकर कार्य करने और चोरी आदि की आदत का आरम्भ बहुत दफा यहीं से हो जाता है। माँ-बाप जब बालक से कुछ छिपाते हैं तो बालक जिस जिज्ञासा की पूर्ति से वंचित हो जाता है, उसके बदले क्षति-पूर्ति चाहता है। यह विचित्र तो प्रतीत होगा, परन्तु 'क्लेप्टोमेनिया' नामक बीमारी का जन्म बहुत बार इसी से होता है। इस बीमारी में मरीज़ रात को उठता है और अपनी या दूसरों की जो चीजें उसकी निगाह में आती हैं उन्हें छिपा देता है।

उत्तर न देने के और भी कई तरह के भयंकर परिणाम हो सकते हैं। यदि हम बच्चों को अपने और दूसरे बच्चों के देह और उसके अंगों के सम्बन्ध में जानने की अनुमति नहीं देते, तो बच्चे उस जिज्ञासा को गुप्त रीति से एक-दूसरे के शरीर की देखभाल करके पूरा करने का यत्न करते हैं। उदाहरण के तौर पर वे ऐसा खेल खेलेंगे जिसमें एक लड़का डॉक्टर बन जाता है और बाकी बालकों को मरीज़ बनाकर वह उनके अंगों का निरीक्षण करता है। सयाने लोग बालक की इन प्रवृत्तियों को देखकर चिन्ता में डूब जाते हैं। वे इन लक्षणों को बालक के चरित्रहीन होने का निःसन्दिग्ध लक्षण समझकर बहुत घबरा जाते हैं।

दुर्भाग्य से माँ-बाप यह नहीं समझ पाते कि उनके नन्हे बालक अथवा बालिका के मन में ऐसे विषय की वाकफियत हासिल करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई है, जिस विषय का ज्ञान वे माँ-बाप अथवा शिक्षक के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति से सुरक्षित रूप से प्राप्त नहीं कर सकते। यह वाकफियत हासिल करने की इच्छा सर्वथा स्वाभाविक और उचित है। जब तक हम ही इस जिज्ञासा को अपनी मूर्खता और अज्ञानवश शरारत से भरी, शिष्टाचारहीन और अवांछित नहीं बना देते, बालक उसे उसी प्रकार निर्दोष खयाल करता है जिस प्रकार किसी अन्य विषय की जिज्ञासा को दोषरहित समझता है। उसे अपनी जिज्ञासा के विषयों में किसी भी प्रकार का भेद दिखाई नहीं देता।

कई विषयों की चर्चा अथवा उनके विचार तक को हम बालकों के लिए अपराधपूर्ण बना देते हैं। परन्तु ऐसा करके हम बालक की नज़रों में उस विषय के महत्त्व को बहुत बढ़ा देते हैं और उस विषयक उसकी ज्ञान-पिपासा को बहुत तीव्र कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि इस विषय के साथ एक प्रकार का प्रतिरोध (इनहिबीशन) का भाव जुड़ जाता है और उसके मन में इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली सब बातों से एक प्रकार का अनुचित भय-सा उत्पन्न हो जाता है। उसका मन बरबस उस विषय की ओर बार-बार खिंचता है और वह उससे दूर-ही-दूर भागने का प्रयत्न करता है।

## विचार-स्वातन्त्र्य

आज हमें अपने विचार-स्वातन्त्र्य पर गर्व है। परन्तु क्या हम बालकों को इसका पूरा उपभोग करने का अवसर देते हैं? बालकों के प्रश्नों के सम्बन्ध में औसत दर्जे के माँ-बाप की कैसी वृत्ति रहती है इसका हमने ऊपर वर्णन किया है। उससे यह तो स्पष्ट ही है कि बालकों को विचारों की वैसी स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करते जिस पर स्वयं हमें इतना गर्व है।

फिर भी बालकों से अनेक प्रकार के यथेच्छ प्रश्न करने में हम अपने-आपको बिलकुल हकदार मानते हैं। हमारी यही धारणा है कि जो कुछ हम पूछें, उसका तत्काल ठीक-ठीक उत्तर देना बालक का कर्तव्य है। यदि वह हमारे किसी प्रश्न का उत्तर न देना चाहे, अथवा उत्तर देने में संकोच और झिझक-सी महसूस करे तो उसे उत्तर देने के लिए हर तरह से मजबूर करते हुए हम कभी इस बात का ध्यान नहीं रखते कि ऐसा करने से हम उसके प्रति उचित सम्मान प्रदर्शन नहीं कर रहे होते, अथवा सामाजिक शिष्टाचार के उन नियमों का उल्लंघन कर रहे होते हैं, जिनके पालन की हम सदा उससे आशा किया करते हैं।

हम अपना यह अधिकार मानते हैं कि बालक के मन के अत्यन्त गोपनीय रहस्यों का भेद भी हम लें, उसकी कल्पनाओं और हृदय के गुप्त भेदों को भली भाँति जानें—भले ही वह उन्हें गुप्त रखने के लिए कितनी ज़िद करे। अपने हृदय की बातों को छिपाकर रखना हम उसके लिए एक अपराध समझते हैं, और ऐसा समझते

हैं कि वह क्यों हमसे ऐसी बातें छिपा रहा है जिन्हें जानने का हमें पूरा-पूरा अधिकार है। क्या जब हम उसे उसके प्रश्नों का भली भाँति उत्तर नहीं दे रहे होते, उससे अनेक बातें छिपा रहे होते हैं, तो हम भी वैसा ही अपराध नहीं कर रहे होते ? हम कभी इस बात को इस ढंग से नहीं सोचते।

हम अपने पैने रहस्योद्भेदक प्रश्नों द्वारा बालक के दिल को टटोलने का कई प्रकार से यत्न करते हैं और बालक अनेक तरकीबों से उत्तर देने से बचना चाहता है। परिणाम यह होता है कि उत्तर देने से टालमटोल करने के कारण वह अपराधी होने का सन्देह-भाजन बन जाता है। हम समझते हैं कि उसके टालमटोल करने की वजह यही है।

कभी-कभी हम उसे मुश्किल में डाल देते हैं कि वह बस इतना कहकर छुटकारा पाने की चेष्टा करता है, कि 'मुझे याद नहीं रहा।' प्रारम्भ में सम्भवतः वह सचमुच यह बात भूले हुए हो और वह बहाना न लगाता हो। परन्तु एक-दो बार इस तरकीब से सफलतापूर्वक छुटकारा पा लेने के बाद वह इसे अपने छूटने के लिए हमेशा का बहाना बना लेता है। कभी-कभी तो सचमुच ही स्मृति कमज़ोर हो जाती है और उसके बचाव के लिए विस्मृति का पर्दा उसकी सहायता करने के लिए आ गिरता है।

## बालक जब विचार-मग्न हो

सयाने लोग बच्चों को बिना कुछ किये चुपचाप अकेला बैठा देखकर प्रायः घबरा उठते हैं। वे यह नहीं समझ सकते कि बालक